ग्रंथकर्ता का परिचय

श्री देवसेन नाम के अनेक दिगम्बर जैन आचार्य हो गए हैं। यहाँ उन श्री देवसेन आचार्य का परिचय दिया जाता है, जिन्होंने सं० ९९० में दर्शनसार की रचना की है।

श्री देवसेन आचार्य ने अपनी गुरु परम्परा और गण-गच्छादि का कोई उल्लेख नहीं किया, किन्तु मात्र इतना ही सूचित किया है कि 'धारा नगरी में रहते हुए श्री पार्श्वनाथ मंदिर में सं० ९९० में माघ सुदी दशमी के दिन दर्शनसार की रचना की गई है।'

इन श्री देवसेन आचार्य की दर्शनसार के अतिरिक्त आलापपद्धति, नयचक्र, तत्त्वसार और आराधनासार आदि कृतियाँ मानी जाती हैं। पर अभी यह निर्णय नहीं हो सका है कि ये सब कृतियाँ परस्पर श्री देवसेन के द्वारा ही रची गई हैं या इनमें से किसी ग्रन्थ के कर्ता अन्य कोई श्री देवसेन आचार्य हैं। यदि आलापपद्धति अन्य श्री देवसेन की रचना है तो इसका समय निकम्म की १० वीं शताब्दी सुनिश्चित है।

[illegible]

[illegible]

परिचय

इस ग्रन्थ का नाम समयसार है। (सार का अर्थ है) जो समय अर्थात् इसका अपरनाम 'द्रव्यानुयोग तर्कणा' है। इसमें द्रव्य, तत्त्व, पदार्थ, स्वरूप, प्रमाण और नय आदि का कथन है। द्रव्यानुयोग की स्वतन्त्र रूप से ज्ञानोपपत्ति का ज्ञान होना सम्यक् आवश्यक है, क्योंकि इसके बिना द्रव्यानुयोग में प्रवेश तथा उसका यथार्थ बोध, नहीं हो सकता है।

मूल नय दो हैं—निश्चयनय और व्यवहारनय, जैसा कि इसी ग्रन्थ की गाथा ४ में कहा है—

'णिच्छयववहारणया मूलभेया णयाण सव्वाणं।'

भेद प्रतिभेदों की अपेक्षा न रखकर द्रव्यानुयोग में प्रायः निश्चय व व्यवहार ऐसे दो नयों का उल्लेख पाया जाता है। उपचरित-असद्भूत व्यवहार नय की दृष्टि से एक जीव दूसरे जीव को मारता है, सुखी दुखी करता है किन्तु अनुपचरित-असद्भूत-व्यवहारनय की दृष्टि से अपने कर्म ही जीव को सुखी-दुखी करते हैं या मारते हैं। समयसार कलश १६८ में कहा भी है—

'सर्वं सदैव नियतं भवति स्वकीयकर्मोदयान्मरणजीवितदुःखसौख्यम्।'

अर्थात् इस जगत में जीवों के मरण, जीवन, दुःख, सुख, सब सदैव नियम से (निश्चय से) अपने कर्मोदय से होता है। यह कथन यद्यपि अनुपचरित-असद्भूत-व्यवहारनय की दृष्टि से है तथापि उपचरित-असद्भूत-व्यवहारनय की अपेक्षा से इसको निश्चय कहा गया है।

असद्भूत व्यवहारनय की अपेक्षा से सद्भूत व्यवहारनय को निश्चय कहा गया है—

ववहारस्स दु आदा पुग्गलकम्मं करेइ णेयविहं।
तं चेव पुणो वेयइ पुग्गलकम्मं अणेयविहं ॥८४॥
णिच्छयणयस्स एवं आदा अप्पाणमेव हि करेदि।
वेदयदि पुणो तं चेव जाण अत्ता दु अत्ताणं ॥८३॥ [समय०]

[illegible] — [illegible] [illegible] [illegible]

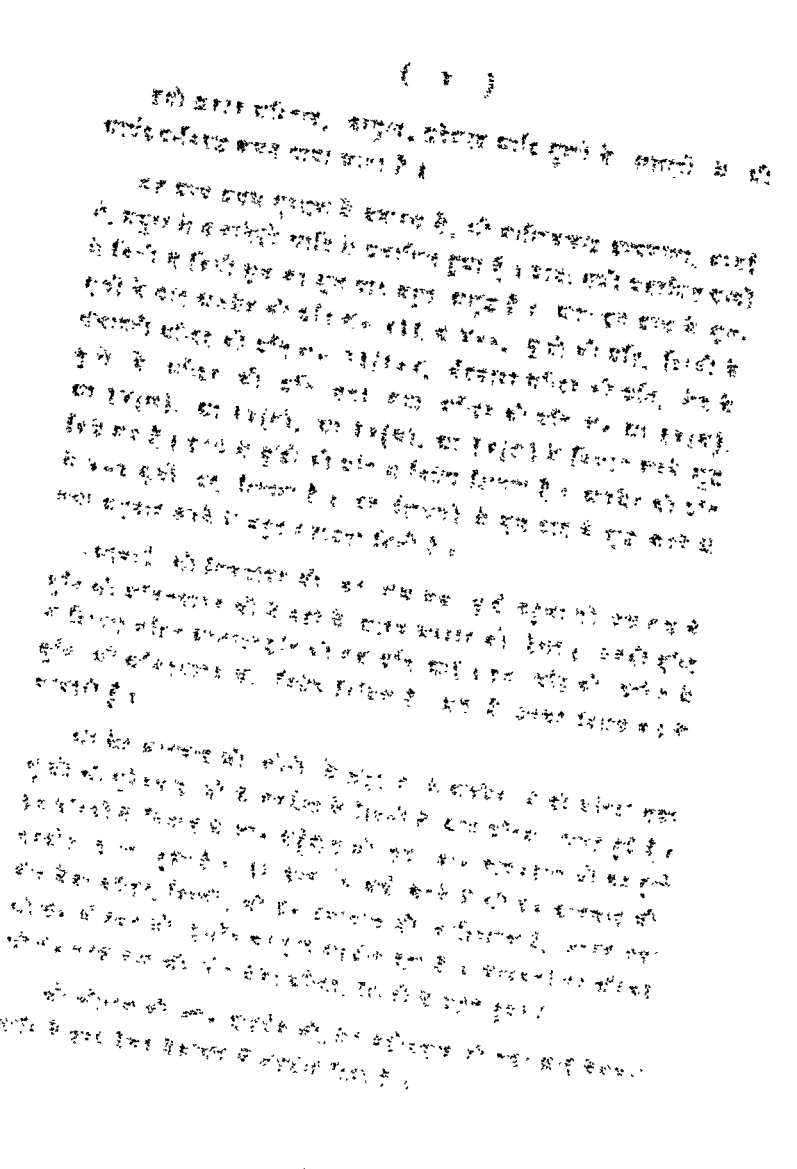

उपरोक्त सभी महानुभावों की सहायता व सहयोग के प्रति मैं हार्दिक आभार व्यक्त करता हूँ।

इस ग्रन्थ के अनुवाद व टीका का कार्य संवत् १९६७ ई० में पूर्ण हो चुका था किन्तु प्रेस की व्यवस्था न हो पाने के कारण उसका प्रकाशन न हो सका। सन् वर्ष सन् १९६९ ई० में भाद्रपद मास के व्याख्यान वर्ष में मेरठ सदर रहना हुआ। तब श्री रतनलाल जैन एम. कॉम. (सुपुत्र ला० महावीरप्रसाद जैन मोटर वाले) ने मुद्रण का भार ले लिया। उनके तथा प्रेस के सम्बद्ध कर्मचारियों के सहयोग के फलस्वरूप उसका मुद्रण हो गया। मैं उक्त श्री रतनलाल आदि का भी बहुत आभारी हूँ।

मैं मन्द बुद्धि हूँ, यदि कहीं पर अनुवाद आदि में कोई अशुद्धि रह गई हो तो विद्वान् उसको शुद्ध करने की और मुझको क्षमा करने की कृपा करें।

सहारनपुर
वीर निर्वाण दिवस संवत् २४९७

—रतनचन्द जैन, मुख्तार

विषय-सूची

सूत्र संख्या	विषय	पृष्ठ-पंक्ति	आवृत्ति-पृष्ठ
(मंगल १)	ग्रन्थारम्भ में मङ्गल के विषय की पूर्विका	१	११
	ग्रन्थ, विधिप्रेम, हेतु, परिमाण, नाम, कर्ता का कथन		३६
१	ग्रन्थारम्भ में मङ्गल करे	१	५७
२	मङ्गलाचरण के भेद	१	४१
३-५	इसमें के बाद इसमें इसके का समाधान	३	४१-४२
	ग्रन्थ, ग्रन्थकर्ता के विषय का कथन		४१

मुख्याधिकार ३८-४ ४२-५१

६	ग्रन्थकर्ता के ग्रन्थारम्भ		४१
७	ग्रन्थारम्भ मुख्यों के बाद में कथन	६	४१
८-१	विशेष मुख्यों के बाद में कथन	३	४२
	ग्रन्थ, दर्शन, मुख्य व कर्ता के सम्बन्ध करना ग्रन्थ, दर्शन में कथन		४७
१०	ग्रन्थ, ग्रन्थकर्ता, मुख्य, ग्रन्थकर्ता ग्रन्थारम्भ मुख्य की है होने विषय की है	४	५१

पदच्छेद-श्रुतिविचार ४-७ ५ १-७ ६

११	कर्म कर्ता के ग्रन्थकर्ता कर्ता	४	५१
१२	११ ग्रन्थ ग्रन्थकर्ता-ग्रन्थकर्ता के विषय का पदच्छेद कथन	५	५१
१३	ग्रन्थ की विशेषताएँ कथन	६	५२
१४	ग्रन्थ की विशेषताएँ ग्रन्थकर्ता कर्ता	६	५७
१५	ग्रन्थ की विशेषता मुख्य ग्रन्थकर्ता	६	५८
१६	ग्रन्थ की तरह ग्रन्थकर्ता-ग्रन्थकर्ता	६	५८
१७	ग्रन्थ की तरह ग्रन्थकर्ता-ग्रन्थकर्ता	६	५८

२३	[illegible]		
२४	[illegible]		
२५	[illegible]		
	[illegible]		
२६	[illegible]		
	[illegible]		
(गाथा १)	[illegible]		
	[illegible]		
	[illegible]		
(गाथा २)	[illegible]		
	किन्तु जीव, पुद्गल में व्यंजन पर्याय भी होती है	७	[illegible]
	[illegible]		७

स्वभाव-अधिकार ७-९ ७२-८

२७	द्रव्य का लक्षण, गुण व पर्याय का लक्षण; द्रव्य के तीनों लक्षणों में अन्तर नहीं है	७	७
२८	सामान्य व विशेष स्वभाव व उनका स्वरूप	७	७
	स्वभाव व गुण में अन्तर		७
२९	जीव व पुद्गल में २१ स्वभाव की सिद्धि	९	७
	जीव में अचेतनत्व व मूर्तत्व की सिद्धि तथा पुद्गल में चेतनत्व व अमूर्तत्व की सिद्धि		७६–७
३०	धर्मादि द्रव्यों में १६ स्वभाव	९	७
३१	काल में १५ स्वभाव	९	८
(गाथा ३)	जीव आदि द्रव्यों में स्वभावों का कथन	९	८

प्रमाण-अधिकार १० ८१-९

३३	प्रमाण व नय से २१ स्वभाव जाने जाते हैं	१०	८

३४-३६	दण्डादि का सम्बन्ध न होने के कारण विवाद,		
	साक्ष्यभाव के कारण सम्पत्ति विभाजन,		
	जैनों में दायविभाग के अनुसार प्राण से पूर्वविभाग	३४	३६-४०
	सप्त अधिकार	**४०-१२७**	**४०-१६६**
३७	अंश का स्वरूप	४०	४१
३८	किस के लिए कुल विभाग करें, अविभक्त कुल का विभाग, पैतृक धन के लिए	४०	४१
३९	दत्तकादिक, कृत्रिमादिक, औरस, क्षेत्रज, सवर्णज, असवर्णज, अनुलोमज, प्रतिलोमज, अध्यूढज, दत्तकृत्रिमादि का विशेष वर्णन	४१	५४
४०	पैतृक धन किस के हाथ से कब से कैसे पराधीन होता है		
	स्वामित्व का विशेष वर्णन	४१	५४
	दत्तकादिक भाग		५४
	दत्तकादिक भाग		५४
	क्षेत्रज भाग		५६
	सवर्णज भाग		५६
	असवर्णज भाग		५६
	अनुलोमज भाग		५६-५७
	प्रतिलोमज भाग		५७-५८
	अध्यूढज भाग		५८-५९
	कृत्रिमादिक भाग		५९-६०
	क्षेत्रज भाग		६०
४१-४२	पैतृक धन का विभाग कब होता है	४१	६०-६१
	पतिव्रता स्त्री का भाग		६१
	अविभक्त भाई का भाग		६२
	अविभक्त भाई का भाग		६२
४३	कौटुम्बिक विभाग में पुत्र के कर्तव्याकर्तव्य कर्म	४१	६३

४८	उत्पाद-व्यय को गौण करके सत्ता को ग्रहण करने वाला शुद्ध-द्रव्यार्थिक नय	११	१०५
४९	भेदकल्पनानिरपेक्ष शुद्ध-द्रव्यार्थिक नय	१२	१०६
५०	कर्मोपाधिसापेक्ष अशुद्ध-द्रव्यार्थिक नय	१२	१०७
५१	उत्पादव्ययसापेक्ष अशुद्ध-द्रव्यार्थिक नय	१२	१०७
५२	भेदकल्पनासापेक्ष अशुद्ध-द्रव्यार्थिक नय	१२	१०८
५३	अन्वयसापेक्ष द्रव्यार्थिक नय	१२	१०९
५४	स्वद्रव्यादिग्राहक द्रव्यार्थिक नय	१२	१०९
५५	परद्रव्यादिग्राहक द्रव्यार्थिक नय	१२	११०
५६	परमभावग्राहक द्रव्यार्थिक नय	१२	१११
५८	अनादि-नित्य पर्यायार्थिक नय	१३	११२
५९	सादिनित्य पर्यायार्थिक नय	१३	११३
	क्षायिकभाव सादि-नित्य है		११४
६०	अनित्य-शुद्ध पर्यायार्थिक नय	१३	११५
६१	नित्य-अशुद्ध पर्यायार्थिक नय	१३	११५
६२	नित्य-शुद्ध पर्यायार्थिक नय	१३	११६
६३	अनित्य-अशुद्ध पर्यायार्थिक नय	१३	११७
६४–६७	भूत-भावि-वर्तमान नैगम नय	१३–१४	११८–१२२
६८–७०	सामान्य-विशेष संग्रह नय	१४	१२२–१२३
७१–७२	दो प्रकार व्यवहार नय	१५	१२४
७३–७५	दो प्रकार ऋजुसूत्र नय	१५	१२६
७६–७९	शब्द, समभिरूढ, एवंभूत नय	१५	१२८–१३०
८२	शुद्ध-सद्भूत-व्यवहार नय	१६	१३१
८३	अशुद्ध-सद्भूत-व्यवहार नय	१६	१३१
८५	स्वजात्यसद्भूत-व्यवहार नय	१६	१३३
८६	विजात्यसद्भूत-व्यवहार नय	१६	१३३
८७	स्वजातिविजात्यसद्भूत-व्यवहार नय	१६	१३४
८८	उपचरित-असद्भूत-व्यवहार नय	१६	१३५

[illegible]

[illegible]

[illegible]

कोरकः = मेषशृङ्गवत् । दण्डकलिकः = दण्डाकारेण परिणतम-
वयवः । ऋजुवेदीकः = पृथक्प्रावरणवान् । चक्षुषा = चक्षुरोगेण ।
शीतपुष्पं नाम = शीतोपचारविशेषकृतपुष्पप्रकारः । अवापवो-
वापवाविरोधकौ शीतवेदकौ शीतकरौ वातापकौ वातकरौ ।
वातः = वातरोगः । संशोधनयोरेक = वातकफयोरेक । तथा च वृद्ध-
पुराणे —

अतः कार्योऽनुपूर्वं तु क्रियाकर्मविधिक्रमः ।
एकद्वित्रिचतुःपञ्चसप्तरात्रं दशैव तु ॥ १४ । १८ ॥
सवातशिरसे हृद्ये सवातेऽक्षि प्रतिश्यजम् ।
कृमिजग्रहणि गिलायसि अन्त्रकूजोपवर्तके ॥ १९ ॥
एतान्विकल्पान् कृत्वा वमनविरेचनादिकम् ।
अजकर्णं तु सावद्यो दातव्यो भेषजक्रमो ॥ २० ॥

त्रिरात्र = त्रिरात्रिकर्मणि = त्रिरात्रकर्मणि । वातकर्मे = वातकर्मणि ।
त्रिरात्रिके = त्रिरात्रकर्मणि ।

॥ इति वनवासिकल्पः ॥

मूलपर्णवरुद्धाम् ॥ २१ ॥

मूलपर्णः = वरुणवृक्षः, अतिबलाप्रधान, त्रिबल-
प्रधान, दीप्यप्रधान, वैदलप्रधान, अर्कप्रधान, वि-
ल्वप्रधान, अर्कप्रधान, अश्वगन्धाप्रधान, एरण्ड-
प्रधान, मूल इत्यादिविशेषण क्षीराद्यप्रधानाय वैद्य-
प्रधान, अर्कप्रधान, कुटजप्रधान, अङ्कोलप्रधान अ-
र्कविल्वप्रधान, अर्कदेवदारुप्रधान, त्रिफलाप्रधान, पू-
प्रधान, अङ्कुरप्रधान, मूलपर्णीप्रधान, मूल इत्यादि
एतैर्विशेषणैरयुक्ता ॥ २१ ॥

दीपोत्सवदिने श्री वर्द्धमानस्वामी मोक्षं गतः ॥६५॥

टिप्पण—अतीते=अतीतकाले। आरोपणं=संस्थापनं।

भाविनि भूतवत्कथनं यत्र स भाविनैगमो यथा अर्हन् सिद्ध एव ॥६६॥

टिप्पण—भाविनि भविष्यति पदार्थे। भूतवत्=भूतेन तुल्यं। अर्हन्=इन्द्रादिकृतामनन्यसंभाविनीं गर्भावतरण जन्माभिषेक निष्क्रमण केवलज्ञानोत्पत्ति निर्वाणाभिधानपंचमहाकल्याणरूपां अर्हणां पूजां अर्हतियोग्यो भवतीति अर्हन्। सिद्धः=सिद्धिः स्वात्मोपलब्धिः संजाता अस्येति सिद्धः, किंचिदूनचरमशरीराकारेणगत सिक्थक मूषा-गर्भाकारवत् छायाप्रतिमावत् पुरुषाकारः सिद्धः। अंजनसिद्ध पादुका-सिद्ध गुटिकासिद्ध खड्गसिद्ध मायासिद्धादि लोकिक विलक्षण केवलज्ञानाद्यनंतगुणव्यक्तिलक्षणः सिद्धः। यः अर्हन स सिद्धएवेति भविष्यति पदार्थे भूतवत्कथनं भाविनैगमः।

कर्तुमारब्धमीषन्निष्पन्नमनिष्पन्नं वा वस्तु निष्पन्नवत् कथ्यते यत्र स वर्तमाननैगमो यथा ओदनः पच्यते ॥६७॥

॥ इति नैगमस्त्रेधा ॥[1]

संग्रहो द्वेधाः ॥६८॥

सामान्यसङ्ग्रहो यथा सर्वाणि द्रव्याणि परस्परम-विरोधीनि ॥६९॥

विशेषसङ्ग्रहो यथा सर्वे जीवाः परस्परमविरोधिनः ॥७०॥

॥ इति सङ्ग्रहो द्विधा ॥

---

१. केचित्षोढा—अतीतवर्तमान, वर्तमानातीत, अनागतवर्तमाना, वर्तमाना-नागता, अनागतातीत, अतीतानागत। देखो दिल्ली की प्रति नं० ३१/१०४।

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

॥ इति [illegible] ॥

असद्भूतव्यवहारस्त्रेधा ॥८४॥

स्वजात्यसद्भूतव्यवहारो यथा परमाणुर्बहुप्रदेशीति कथनमित्यादि ।८५।

विजात्यसद्भूतव्यवहारो यथा मूर्तं मतिज्ञानं यतो मूर्तं द्रव्येण जनितम् ॥८६॥

स्वजातिविजात्यसद्भूतव्यवहारो यथा ज्ञेये जीवेऽजीवे ज्ञानमिति कथनं ज्ञानस्य विषयात् ॥८७॥

॥ इत्यसद्भूतव्यवहारस्त्रेधा ॥

उपचरितासद्भूतव्यवहारस्त्रेधा ॥८८॥

स्वजात्युपचरितासद्भूतव्यवहारो यथा पुत्रदारादि मम[1] ॥८९॥

---

१. 'दाराद्यहं मम वा' इति पाठांतरं [बूंदी की प्रति में]।

सप्तविधसंयोजनसूत्रम्

स्रोतआपत्तिफलसाक्षात्क्रियाय संवर्तति सकृदागामिफलसाक्षात्क्रियाय संवर्तति [१४२]

द्विपद—स्रोतः—आपत्ति—फल—साक्षात्क्रिया—संवर्तति, सकृदागामि—फल—साक्षात्क्रिया—संवर्तति ।

॥ इति सप्तविधसंयोजनसूत्रम् ॥

स्रोतआपन्नपुद्गलसूत्रम्

स्रोतआपन्नस्रोतआपन्नपुद्गलसमासः [१४३]

द्विपद—स्रोतआपन्न—स्रोत आपन्नो पुग्गलो इति स्रोतआपन्न । समास—पुग्गले ।

सत्तक्खत्तुपरमसोतापन्नसोतापन्नपुग्गलसमासः [१४४]

द्विपद—सत्तक्खत्तुपरम—सत्त खत्तुं परमो यस्स सो सत्तक्खत्तुपरमो । समास—पुग्गले ।

[१४५] द्विबीजकोलंकोलसोतापन्नसोतापन्नपुग्गलसमासः [१४५]

द्विपद—द्विबीजकोलंकोल—द्वे बीजानि कुलानि च द्विबीजकोलंकोलो । समास—पुग्गले ।

एकबीजिसकदागामिसकदागामिपुग्गलसमासः [१४६]

एकबीजिसकृदागामिसकृदागामिपुग्गलसमासः [१४७]

द्विपद—एकबीजि—एकं बीजं यस्स सो एकबीजी । सकृदागामि—सकृदागामी पुग्गलो इति सकृदागामि । समास—पुग्गले ।

द्रव्याश्रया निर्गुणा गुणाः इति लक्षणभेदः। द्रव्येण लोकमानं क्रियते, गुणेन द्रव्यं ज्ञायते, इति प्रयोजन भेदः। यथा जीवद्रव्यस्य जीव इति संज्ञा। ज्ञानगुणस्य ज्ञानमिति संज्ञा। चतुर्भिप्राणैः जीवति जीविष्यति अजीवतिति जीवद्रव्यलक्षणं। ज्ञायते पदार्थ अनेनेति ज्ञानमिति ज्ञानगुणलक्षणं। जीवद्रव्यस्य बंधमोक्षादिपर्यायैरविनाशरूपेणपरिणमनं प्रयोजनं। ज्ञानगुणस्य पुनः पदार्थपरिच्छित्ति मात्रमेव प्रयोजनं इति संक्षेपेण।

गुणगुण्याद्येकस्वभावादभेदस्वभावः ॥११३॥

भाविकाले परस्वरूपाकारभवनाद्भव्यस्वभावः ॥११४॥

कालत्रयेऽपि परस्वरूपाकाराभवनादभव्यस्वभावः ॥११

[illegible]

अण्णण्णं पविसंता दिंता उग्गासमण्णमण्णस्स।

मेलंता वि य णिच्चं सगसगभावं ण विजहंति ॥७

[illegible] परमस्वभावः ॥११६॥

[illegible] पारिणामिकः।

[illegible] ॥

[illegible] ॥११७॥

[illegible] गुणा न भवन्ति ॥११८॥

[illegible]।

[illegible] ॥१[illegible]॥

[illegible]

स्यात्, [illegible] ॥१[illegible]॥

टिप्पण—सर्वेषां सर्वजीवानां।

सर्वथाशब्दः सर्वप्रकारवाची, अथवा सर्वकालवाची, अथवा नियमवाची वा, अनेकान्तसापेक्षी वा ? यदि सर्वप्रकारवाची सर्वकालवाची अनेकान्तवाची वा, सर्वादिगणे पठनात् सर्वशब्द, एवं विधश्चेत्तर्हि सिद्धं नः समीहितम्। अथवा नियमवाची चेत्तर्हि सकलार्थानां तव प्रतीतिः कथं स्यात् ? नित्यः अनित्यः एकः अनेकः भेदः अभेदः कथं प्रतीतिः स्यात् नियमितपक्षत्वात् ?॥१४०॥

टिप्पण—नः=अस्माकं।

तथाऽचैतन्यपक्षेऽपि सकलचैतन्योच्छेदः स्यात् ॥१४१॥

मूर्तस्यैकान्तेनात्मनो न[1] मोक्षस्यावाप्तिः स्यात् ॥१४२॥

सर्वथाऽमूर्त्तस्यापि तथात्मनः संसारविलोपःस्यात् ॥१४३॥

एकप्रदेशस्यैकान्तेनाखण्डपरिपूर्णस्यात्मनोऽनेककार्यकारित्व एव हानिः स्यात् ॥१४४॥

टिप्पण—एकप्रदेशस्य=एकप्रदेशस्य पक्षस्यांगीकारे।

सर्वथाऽनेकप्रदेशत्वेऽपि तथा तस्यानर्थकार्यकारित्वं स्वस्वभावशून्यताप्रसङ्गात् ॥१४५॥

---

१. 'मोक्षस्याव्यप्तिः' इत्यपि पाठः (बूंदी की प्रति)।

परमभावग्रहणसमर्थः प्रयोजनमस्येति परमभावग्राहकः
॥१९०॥

॥ इति द्रव्यार्थिकस्य व्युत्पत्तिः ॥

पर्याय एवार्थः प्रयोजनमस्येति पर्यायार्थिकः ॥१९१॥

अनादिनित्यपर्याय एवार्थः प्रयोजनमस्येत्यानादिनित्य-
पर्यायार्थिकः ॥१९२॥

टिप्पण—अनादिनित्य पर्यायार्थिको यथा पुद्गलपर्यायो नित्यो मेर्वादिः ।

सादिनित्यपर्याय एवार्थः प्रयोजनमस्येति सादिनित्य-
पर्यायार्थिकः ॥१९३॥

टिप्पण—सादिनित्यपर्यायार्थिको यथा सिद्धजीवपर्यायो नित्यः ।

शुद्धपर्याय एवार्थः प्रयोजनमस्येति शुद्धपर्यायार्थिकः
॥१९४॥

अशुद्धपर्याय एवार्थः प्रयोजनमस्येति अशुद्धपर्यायार्थिकः
॥१९५॥

॥ इति पर्यायार्थिकस्य व्युत्पत्तिः ॥

नैकं गच्छतीति निगमः, निगमोविकल्पस्तत्रभवो नैगमः
॥१९६॥

अभेदरूपतया वस्तुजातं संगृह्णातीति संग्रहः ॥१९७॥

टिप्पण—वस्तुजातं=वस्तुसमूहं ।

[illegible] ॥२१३॥

अध्यात्मनयों का कथन—

पुनरप्यध्यात्मभाषया नया उच्यन्ते ॥२१४॥

तावन्मूलनयौ द्वौ निश्चयो व्यवहारश्च ॥२१५॥

तत्र निश्चयनयोऽभेदविषयो, व्यवहारो भेदविषयः ॥२१६॥

टिप्पण—अभेद विषयो ज्ञेयः यस्य सः निश्चयनयः। भेदेन ज्ञातुं योग्यः सो व्यवहारनयः।

तत्र निश्चयो द्विविधः शुद्धनिश्चयोऽशुद्धनिश्चयश्च ॥२१७॥

तत्र निरुपाधिकगुणगुण्यभेद विषयकः शुद्धनिश्चयो यथा केवलज्ञानादयो जीव इति ॥२१८॥

सोपाधिक विषयोऽशुद्धनिश्चयो यथा मतिज्ञानादयो जीव इति ॥२१९॥

टिप्पण—उपाधिना कर्मजनितविकारेण सह वर्तत इति सोपाधिः।

व्यवहारो द्विविधः सद्भूतव्यवहारोऽसद्भूतव्यवहारश्च ॥२२०॥

तत्रैकवस्तुविषयः सद्भूतव्यवहारः ॥२२१॥

टिप्पण—यथा वृक्ष एक एव तल्लग्नाः शाखा भिन्नाः; परन्तु वृक्ष एव तथा सद्भूतव्यवहारो गुणगुणिनोर्भेद कथनम्।

[illegible] ॥१३४॥

[illegible] ।

[illegible]
॥१३५॥

[illegible] ॥१३६॥

[illegible] ।

[illegible] ॥१३७॥

[illegible] ।

[illegible]
॥१३८॥

[illegible] ॥१३९॥

[illegible] ॥१३९॥

॥ इति [illegible] ॥

[illegible] ।
[illegible] ॥

आलापपद्धतिः

मंगलाचरण पूर्वक ग्रंथकार की प्रतिज्ञा—

गुणानां विस्तरं वक्ष्ये स्वभावानां तथैव च ।
पर्यायाणां विशेषेण नत्वा वीरं जिनेश्वरम् ॥१॥

अन्वयार्थ—(वीर जिनेश्वर) विशेष रूप से मोक्ष लक्ष्मी को देने वाले वीर जिनेश्वर को अर्थात् श्री महावीर भगवान को (नत्वा) नमस्कार करके (अहं) मैं देवसेनाचार्य (गुणानां) द्रव्यगुणों के (तथैव च) और उसी प्रकार से (स्वभावानां) स्वभावों के तथा (पर्यायाणां) पर्यायों के भी (विस्तरं) विस्तार को (विशेषेण) विशेष रूप से (वक्ष्ये) कहता हूँ। अर्थात् द्रव्य स्वभाव और पर्यायों के स्वरूप विस्तारपूर्वक वर्णन करता हूँ।

विशेषार्थ—यह मंगलरूप श्लोक देशामर्षक होने से मंगल, निमित्त हेतु, परिमाण, नाम और कर्ता इन छह अधिकारों का संकारण प्रकथन किया जाता है। कहा भी है—

मंगल-णिमित्त-हेऊ परिमाणं णाम तह य कत्तारं।
वागरिय छ प्पि पच्छा वक्खाणउ सत्थमाइरियो[1] ॥

मंगल, निमित्त, हेतु, परिमाण, नाम और कर्ता इन छह अधिकारों का व्याख्यान करने के पश्चात् आचार्य शास्त्र का व्याख्यान करे।

१. धवल पु० १ पृ० ७।

होता है। सर्व-निर्मल से सम्यग्ज्ञान और सम्यग्ज्ञान से परमकल्याण होता है।

इस कथन से उन लोगों के मत का खण्डन हो जाता है जो शास्त्र को ज्ञान में निमित्त न मानकर यह कहते हैं कि शास्त्र से ज्ञान नहीं होता है।

परिमाण की व्याख्या—अक्षर, पद आदि की अपेक्षा परिमाण संख्यात है और तद्वाच्य विषय की अपेक्षा परिमाण अनन्त है।

नाम—इस शास्त्र का नाम आलापपद्धति है।

कर्ता—अर्थकर्ता और ग्रन्थकर्ता के भेद से कर्ता दो प्रकार का है। श्री १००८ महावीर तीर्थंकर अर्थकर्ता हैं। श्री १०८ गौतम गणधर द्रव्य-श्रुत के कर्ता हैं। श्री गौतम स्वामी, लोहाचार्य और जम्बू स्वामी ये तीन अनुबद्ध केवली हुए। इनके पश्चात् परिपाटी क्रम से पांच श्रुतकेवली हुए। इसके पश्चात् ज्ञान हीन होता गया, किन्तु वह ज्ञान परम्परा से श्री १०८ देवसेन आचार्य को प्राप्त हुआ, जिन्होंने इस आलापपद्धति शास्त्र की रचना की है। इससे उस मत का खण्डन हो जाता है जो सर्वथा यह मानते हैं कि एक द्रव्य दूसरे द्रव्य की पर्याय का कर्ता नहीं हो सकता है।

इस प्रकार मंगल, निमित्त, हेतु, परिमाण, नाम और कर्ता का व्याख्यान समाप्त हुआ।

आलापपद्धतिर्वचनरचनाऽनुक्रमेण
नयचक्रस्योपरि उच्यते ॥१॥

शब्दार्थ—(आलाप) शब्दोच्चारण अर्थात् बोलचाल। (पद्धति) रीति या ढंग। (नयचक्र) सम्यग्ज्ञान के अवयव रूप नय ताका समूह।

सूत्रार्थ—वचनों की रचना के क्रम के अनुसार प्राकृतमय नयचक्र नामक शास्त्र के आधार पर से आलापपद्धति को (मैं देवसेनाचार्य) कहता हूं।

अर्थात् इस आलापपद्धति शास्त्र की रचना प्राकृत-नयचक्र ग्रंथ के आधार पर हुई है।

सा च किमर्थम् ? ॥२॥

सूत्रार्थ—इस आलापपद्धति ग्रंथ की रचना किस लिये की गई है ?

जो समस्त द्रव्यों को अवगाहन देता है वह आकाश द्रव्य है। क्षेत्र की अपेक्षा आकाश द्रव्य सब द्रव्यों से बड़ा है, सर्व-व्यापी है, इसलिये समस्त द्रव्यों को अवकाश देने में समर्थ है। अन्य द्रव्य भी परस्पर अवकाश देते हैं, किन्तु सर्व-व्यापी नहीं होने से वे समस्त द्रव्यों को अवगाहन नहीं दे सकते, इसीलिये अवगाहनहेतुत्व आकाश द्रव्य का लक्षण कहा गया है। धर्म-द्रव्य के अभाव के कारण अलोकाकाश में कोई द्रव्य नहीं जाता है इसलिये वह किसी को अवगाहन नहीं देता है। फिर भी उसमें अवकाश दान की शक्ति है। इस प्रकार अलोकाकाश में भी अवगाहन-हेतुत्व लक्षण घटित हो जाता है। इससे, कार्य होने पर ही निमित्त कारण कहलाता है इस सिद्धान्त का खण्डन हो जाता है। निमित्त अपने कारणपने की शक्ति से निमित्त कहलाता है।

जो द्रव्यों के वर्तन में सहकारी कारण हो वह कालद्रव्य है। काल के अभाव में पदार्थों का परिणमन नहीं होगा। परिणमन न हो तो द्रव्य व [illegible] भी न होगी। सर्व शून्य का प्रसंग आवेगा।[2]

द्रव्य का लक्षण—

सद्द्रव्यलक्षणम् ॥६॥

सूत्रार्थ—द्रव्य का लक्षण सत् है।

उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत् ॥७॥[4]

सूत्रार्थ—जो उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य से युक्त है वह सत् है।

विशेषार्थ—अन्तरंग और बहिरंग निमित्त के वश से जो नवीन अवस्था उत्पन्न होती है उसे उत्पाद कहते हैं। जैसे, मिट्टी के पिंड की घट पर्याय। पूर्व अवस्था के नाश को व्यय कहते हैं। जैसे, घट की उत्पत्ति होने पर पिंड आकृति का व्यय। अनादिकालीन पारिणामिक स्वभाव है, उसका व्यय और

१ सर्वार्थसिद्धि अ० ५। २. 'कालाभावे न भावानां परिणामस्तदन्तरात्। न द्रव्यं नापि पर्यायः सर्वाभावः प्रसज्यते॥' (नियमसार गाथा ३३ की टीका में उद्धृत)। ३ तत्त्वार्थ सूत्र अ० ५ सूत्र २९। ४. तत्त्वार्थ सूत्र अ० ५ सूत्र ३०।

प्रत्येकमष्टौ गुणेषाम् ॥१०॥

सूत्रार्थ—इन दस सामान्य गुणों में से प्रत्येक द्रव्य में आठ-आठ गुण हैं और दो-दो गुण नहीं है।

जीव द्रव्य में अचेतनत्व और मूर्तत्व ये दो गुण नहीं हैं। पुद्गल द्रव्य में चेतनत्व और अमूर्तत्व ये दो गुण नहीं हैं। धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य, आकाश-द्रव्य और कालद्रव्य इन चार द्रव्यों में चेतनत्व और मूर्तत्व ये दो गुण नहीं हैं। इस प्रकार दो-दो गुणों को छोड़कर प्रत्येक द्रव्य में आठ-आठ गुण होते हैं।

जीव में अस्तित्व, वस्तुत्व, द्रव्यत्व, प्रमेयत्व, अगुरुलघुत्व, प्रदेशत्व, चेतनत्व और अमूर्तत्व ये आठ गुण होते हैं।

पुद्गल द्रव्य में अस्तित्व, वस्तुत्व, द्रव्यत्व, प्रमेयत्व, अगुरुलघुत्व, प्रदेशत्व, अचेतनत्व, मूर्तत्व ये आठ गुण होते हैं।

धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य, आकाशद्रव्य, कालद्रव्य इन चार द्रव्यों में अस्तित्व, वस्तुत्व, द्रव्यत्व, प्रमेयत्व, अगुरुलघुत्व, प्रदेशत्व, अचेतनत्व और अमूर्तत्व ये आठ गुण होते हैं।

अब द्रव्यों के विशेष गुणों को बतलाते हैं।

ज्ञानदर्शनसुखवीर्याणि स्पर्शरसगन्धवर्णाः गतिहेतुत्वं स्थितिहेतुत्वमवगाहहेतुत्वं वर्तनाहेतुत्वं चेतनत्वमचेतनत्वं मूर्तत्वममूर्तत्वं द्रव्याणां षोडश विशेषगुणाः ॥११॥

सूत्रार्थ—ज्ञान, दर्शन, सुख, वीर्य, स्पर्श, रस, गन्ध, वर्ण, गतिहेतुत्व, स्थितिहेतुत्व, अवगाहनहेतुत्व, वर्तनाहेतुत्व, चेतनत्व, अचेतनत्व, मूर्तत्व, अमूर्तत्व ये द्रव्यों के सोलह विशेष गुण हैं।

विशेषार्थ—जिस शक्ति के द्वारा आत्मा पदार्थों को साकार जानता है, सो ज्ञान है।

भूतार्थ का प्रकाश करने वाला ज्ञान होता है। अथवा सद्भाव के निश्चय करने वाले धर्म को ज्ञान कहते हैं।[1]

---

१. 'भूतार्थप्रकाशकः ज्ञानम्। अथवा सद्भावविनिश्चयोपलम्भकं ज्ञानम्।' (धवल पु० १ पृ० १४२ व १४३)

पञ्चमोऽधिकारः

प्रकारान्तर से द्रव्य का लक्षण

गुणपर्ययवद्द्रव्यम् ॥३७॥[1]

सूत्रार्थ—गुण-पर्याय वाला द्रव्य है।

विशेषार्थ—पहिले सूत्र ५ अ० ३ में द्रव्य का लक्षण 'सत्' तथा 'उत्पाद व्यय-ध्रौव्य' कह चुके हैं फिर भी यहां प्रकारान्तर से द्रव्य का लक्षण कहा गया है। द्रव्य का गुण और पर्यायों से कथंचित् भेद है इसलिये सूत्र में 'वत्' प्रत्यय का प्रयोग किया गया है। गुण अन्वयी होते हैं और पर्याय व्यतिरेकी होती हैं। कहा भी है—

गुण इदि दव्वविहाणं दव्वविकारो हि पज्जवो भणिदो।
तेहि अणूणं दव्वं अजुदपसिद्धं हवे णिच्चं ॥[2]

अर्थ—द्रव्य में भेद करने वाले धर्म को विशेष गुण और द्रव्य के विकार को पर्याय कहते हैं। द्रव्य इन दोनों से युक्त होता है। तथा वह अयुतसिद्ध और

१. यही सूत्र मोक्षशास्त्र अ० ५ में सूत्र ३८ है। २. सर्वार्थसिद्धि पृ० ८

से जीव में मूर्तिक स्वभाव हो जाता है। शेष चार द्रव्य (धर्म, अधर्म, आकाश, काल) पुद्गल के साथ बंध को प्राप्त नहीं होते, इसलिए उनमें मूर्त-स्वभाव का निषेध किया गया है।

धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य, आकाशद्रव्य, कालद्रव्य ये चारों द्रव्य बंध को प्राप्त नहीं होते इसलिये उनमें विभावस्वभाव, उपचरितस्वभाव और अशुद्धस्वभाव भी नहीं होते, क्योंकि अन्य द्रव्य के साथ बंध को प्राप्त होने पर ही द्रव्य अशुद्ध होता है, विभावरूप परिणमता है और कथंचित् उस अन्य द्रव्य के स्वभाव को ग्रहण करने से अन्यद्रव्य के स्वभाव का उपचार होता है। जीव और पुद्गल बंध को प्राप्त होते हैं, इसलिये उनमें विभावस्वभाव, उपचरित स्वभाव और अशुद्धस्वभाव का कथन किया गया है।

कालद्रव्य में स्वभावों की संख्या—

तत्र बहुप्रदेशत्वंविना कालस्य पंचदश स्वभावाः ॥३१॥

सूत्रार्थ—(इकतीस स्वभावों में से पांच स्वभावों का निषेध करके सूत्र ३० में शेष सोलह स्वभाव धर्मादिक तीन द्रव्यों में बतलाये गये थे) उन सोलह स्वभावों में से बहुप्रदेश-स्वभाव के बिना शेष पन्द्रह स्वभाव कालद्रव्य में पाये जाते हैं।

विशेषार्थ—जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश ये पांच द्रव्य बहुप्रदेशी हैं, इसीलिये इनको पंचास्तिकाय कहा गया है, किन्तु कालद्रव्य अर्थात् कालाणु एकप्रदेशी है, इसलिये उसको बहुप्रदेशी अर्थात् कायवान् नहीं कहा गया है।

'अजीवकायाधर्माधर्माकाशपुद्गलाः।' ॥५/१॥ [तत्त्वार्थसूत्र

अर्थ—धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य, आकाशद्रव्य, पुद्गलद्रव्य ये चारों अजीव भी हैं और कायवान् भी हैं।

जीव, पुद्गल, धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य, आकाशद्रव्य यद्यपि बहुप्रदेशी हैं तथापि अखण्ड की अपेक्षा से इनमें एकप्रदेशी-स्वभाव भी है।

यद्यपि पुद्गल परमाणु भी एकप्रदेशी है तथापि स्निग्ध-रूक्ष गुण के कारण वह पुद्गल परमाणु बंध को प्राप्त होने पर बहुप्रदेशी हो जाता है

प्रमाण का लक्षण—

सम्यग्ज्ञानं प्रमाणम् ॥३४॥

सूत्रार्थ—सम्यग्ज्ञान को प्रमाण कहते हैं।

विशेषार्थ—संशय विपर्यय और अनध्यवसाय से रहित ज्ञान को सम्य कहते हैं। समीचीन ज्ञान को सम्यग्ज्ञान कहते हैं।

अन्यूनमनतिरिक्तं यथातथ्यं विना च विपरीतात्।
निःसन्देहं वेद यदाहुस्तज्ज्ञानमागमिनः ॥४२॥

[रत्नकरण्ड श्रावका

अर्थ—जो ज्ञान न्यूनता रहित, अधिकता रहित, विपरीतता रहित सन्देह रहित, जैसा का तैसा जानता है, शास्त्र के ज्ञाता पुरुष उसको स ज्ञान कहते हैं।

अनादि को सादि रूप जानना, अनन्त (अन्त रहित) को सान्त जानना, अविद्यमान पर्याय को विद्यमान रूप से जानना, अभाव रूप प को सद्भाव रूप से जानना, अनियत को नियत रूप जानना सम्यग्ज्ञान नहीं क्योंकि उसने यथार्थ नहीं जाना है।

प्रमाण के भेद—

तद्द्वेधा प्रत्यक्षेतरभेदात् ॥३५॥

सूत्रार्थ—प्रत्यक्ष प्रमाण और इतर अर्थात् परोक्ष प्रमाण के भेद से प्रमाण दो प्रकार का है।

विशेषार्थ—तत्त्वार्थ सूत्र में भी 'तत्प्रमाणे ॥१/१०॥' इस सूत्र प्रमाण के दो भेद बतलाये हैं। इतर से अभिप्राय परोक्ष का है। अ उपमान, शब्द प्रमाण परोक्षप्रमाण हैं। जो इन्द्रिय ज्ञान है वह परोक्षप्रमा

प्रति+अक्ष=प्रत्यक्ष। 'अक्ष्णोति व्याप्नोति जानातीत्यक्ष' इस प्रकार अक्ष शब्द का अर्थ आत्मा है। केवल आत्मा के प्रति जो है उसको प्रत्यक्ष कहते हैं। [सर्वार्थसिद्धि १/१२]

मात्र से उसमें प्रस्थ व्यवहार किया गया है। तथा ईंधन और जल आदि के लाने में लगे हुए किसी पुरुष से कोई पूछता है कि आप क्या कर रहे हैं? उसने कहा—भात पका रहा हूँ। उस समय भात पर्याय सन्निहित नहीं है, केवल भात के लिये किये गये व्यापार में भात का प्रयोग किया गया है। इस प्रकार का जितना व्यवहार अनिष्पन्न अर्थ के अवलम्बन से संकल्प मात्र को विषय करता है वह सब नैगम नय का विषय है। [सर्वार्थसिद्धि १/३३]

संग्रह नयः—जो नय अभेद रूप से सम्पूर्ण वस्तु समूह को विषय करता है वह संग्रह नय है।[1]

भेद सहित सब पर्यायों को अपनी जाति के अविरोध द्वारा एक मानकर सामान्य से सब को ग्रहण करने वाला नय संग्रह नय है। यथा—सत्, द्रव्य और घट आदि। 'सत्' कहने पर सत् इस प्रकार के वचन और विज्ञान की अनुवृत्ति रूप लिंग से अनुमित सत्ता के आधारभूत सब पदार्थों का सामान्य रूप से संग्रह हो जाता है। 'द्रव्य' ऐसा कहने पर भी 'उन उन पर्यायों को द्रवता है, प्राप्त होता है' इस प्रकार इस व्युत्पत्ति से युक्त जीव, अजीव और उनके सब भेद प्रभेदों का संग्रह हो जाता है। तथा 'घट' ऐसा कहने पर घट, इस प्रकार की बुद्धि और घट, इस प्रकार के शब्द की अनुवृत्ति रूप लिंग से अनुमित सब घट पदार्थों का संग्रह हो जाता है। [सर्वार्थसिद्धि १/३३]

व्यवहारनय—संग्रह नय से ग्रहण किये हुए पदार्थ को भेद रूप से व्यवहार करता है, ग्रहण करता है, वह व्यवहार नय है।[2]

संग्रह नय के द्वारा ग्रहण किये गये पदार्थों का विधिपूर्वक अवहरण अर्थात् भेद करना व्यवहारनय है। सर्व संग्रह नय के द्वारा जो वस्तु ग्रहण की गई है, वह अपने उत्तर भेदों के बिना व्यवहार कराने में असमर्थ है, इस लिये व्यवहारनय का आश्रय लिया जाता है। यथा—संग्रह नय का विषय जो द्रव्य है, वह जीव अजीव की अपेक्षा किये बिना व्यवहार कराने में असमर्थ है, इसलिये जीव द्रव्य है और अजीव द्रव्य है, इस प्रकार के व्यवहार का

१. आलापपद्धति सूत्र १९७। २. आलापपद्धति सूत्र १९८।

रूप किया नहीं पाई जाती। [जयधवल पु० १ पृ० २२९]

तथा इस ऋजुसूत्र नय की दृष्टि में 'काक कृष्ण होता है' यह वाक्य भी नहीं बन सकता है, क्योंकि जो कृष्ण है वह कृष्णरूप ही है, काकरूप नहीं है। यदि कृष्ण को काकरूप माना जाय तो भ्रमर आदिक को भी काकरूप मानने की आपत्ति प्राप्त होती है। उसी प्रकार काक भी काकरूप है कृष्णरूप नहीं है, क्योंकि यदि काक को कृष्णरूप माना जाय तो काक के पीले पित्त सफेद हड्डी और लाल रुधिर आदिक को भी कृष्णरूप मानने की आपत्ति प्राप्त होती है। [जयधवल पु० १ पृ० २२९]

इस ऋजुसूत्र नय की दृष्टि से विशेषण-विशेष्य भाव भी नहीं बनता है, क्योंकि भिन्न दो पदार्थों में तो विशेषण-विशेष्य भाव बन नहीं सकता, क्योंकि भिन्न दो पदार्थों में विशेषण-विशेष्य भाव मानने पर अव्यवस्था की आपत्ति प्राप्त होती है, अर्थात् जिन किन्हीं दो पदार्थों में भी विशेषण-विशेष्य भाव हो जायगा। उसी प्रकार अभिन्न दो पदार्थों में विशेषण-विशेष्य भाव नहीं बन सकता, क्योंकि अभिन्न दो पदार्थों का अर्थ एक पदार्थ ही होता है और एक पदार्थ में विशेषण-विशेष्य भाव के मानने में विरोध आता है।

[जयधवल पु० १ पृ० २२९

इस ऋजुसूत्र नय की दृष्टि में संयोग अथवा समवाय सम्बन्ध नहीं बनता है। इसीलिये सजातीय और विजातीय दोनों प्रकार की उपाधियों से रहित केवल शुद्ध परमाणु ही है, अतः जो स्तंभादिकरूप स्कन्धों का प्रत्यय होता है वह ऋजुसूत्र नय की दृष्टि में भ्रान्त है। तथा वह परमाणु निरवयव है, क्योंकि परमाणु के ऊर्ध्वभाग, अधोभाग और मध्यभाग आदि अवयवों के मानने पर अनवस्था दोष की आपत्ति प्राप्त होती है और परमाणु को अपरमाणुपने का प्रसंग प्राप्त होता है। [जयधवल पु० १ पृ० २३०]

इस ऋजुसूत्र नय की दृष्टि में वध्य-वधक भाव, वध्य-घातक भाव, दाह्य-दाहकभाव और संसारादि कुछ भी नहीं बन सकते।

[जयधवल पु० १ पृ० २३०]

इस ऋजुसूत्र नय की दृष्टि में ग्राह्य-ग्राहकभाव भी नहीं बनता है। ज्ञान

नक्षत्र है। यहां पर नक्षत्र शब्द एक वचनान्त और पुनर्वसू शब्द द्विवचनान्त है, इसलिये एकवचन के साथ में द्विवचन का कथन करने से संख्या-व्यभिचार है। भूत आदि काल के स्थान में भविष्यत् आदि काल का कथन करना काल-व्यभिचार है। जैसे—'विश्वदृश्वनाम्ना पुत्रो जनिता' जिसने समस्त विश्व को देख लिया है ऐसा उसको पुत्र होगा। यहां पर 'विश्वदृश्वा' शब्द भूतकालीन है और 'जनिता' यह भविष्यत्कालीन है। अतः भविष्य अर्थ के विषय में भूतकालीन प्रयोग करना काल-व्यभिचार है। एक कारक के स्थान पर दूसरे कारक के प्रयोग करने को साधन-व्यभिचार कहते हैं। उत्तमपुरुष के स्थान पर मध्यमपुरुष और मध्यमपुरुष के स्थान पर उत्तमपुरुष आदि के प्रयोग करने को पुरुष-व्यभिचार कहते हैं।

इस प्रकार जितने भी लिङ्ग आदि व्यभिचार हैं वे सभी अयुक्त हैं, क्योंकि अन्य अर्थ का अन्य अर्थ के साथ सम्बन्ध नहीं हो सकता। इसलिये जैसा लिंग हो, जैसी संख्या हो और जैसा साधन हो उसी के अनुसार शब्दों का कथन करना उचित है। [जयधवल पु० १ पृ० २३५-२३७]

समभिरूढनयः—आगे सूत्र २०१ में कहेंगे **'परस्परेणाभिरूढाः समभिरूढाः। शब्दभेदेऽप्यर्थभेदो नास्ति, यथा शक्र इन्द्रः पुरंदर इत्यादयः समभिरूढाः।'** परस्पर में अभिरूढ शब्दों को ग्रहण करने वाला नय समभिरूढ नय कहलाता है। इस नय के विषय में शब्द-भेद रहने पर भी अर्थ-भेद नहीं है, जैसे शक्र, इन्द्र और पुरंदर ये तीनों ही शब्द देवराज के पर्यायवाची होने से देवराज में अभिरूढ हैं। किन्तु शोलापुर से प्रकाशित नयचक्र पृ० १८ पर लिखा है—**'शब्दभेदेऽप्यर्थभेदो भवत्येवेति'** अर्थात् शब्द-भेद होने पर अर्थ-भेद होता ही है। जयधवल में भी इस प्रकार कहा है—

शब्दभेद से जो नाना अर्थों में अभिरूढ है अर्थात् जो शब्दभेद से अर्थभेद मानता है वह समभिरूढनय है। जैसे एक ही देवराज इन्दनक्रिया का कर्ता होने से अर्थात् आज्ञा और ऐश्वर्य आदि से युक्त होने के कारण इन्द्र कहलाता है और वही देवराज शकनात् अर्थात् सामर्थ्यवाला होने के कारण शक्र कहा

एवंभूत नय—जिस नय में जो नाम जिस क्रिया की प्रधानता होती है उस एवंभूत नय है।[1]

जिस शब्द का जिस क्रियारूप अर्थ है तद्रूप क्रिया से परिणत समय ही उस शब्द का प्रयोग करना युक्त है, अन्य समय में नहीं, ऐसा जिस का अभिप्राय है वह एवंभूत नय है। इस नय में पदों का समास नहीं है, क्योंकि जो स्वरूप और काल की अपेक्षा भिन्न हैं उनको एक मानने में विरोध आता है। यदि कहा जाय कि पदों में एककालवृत्ति रूप समास हो जाता है सो ऐसा कहना भी ठीक नहीं है, क्योंकि पद क्रम से ही उत्पन्न होते हैं और वे जिस क्षण में उत्पन्न होते हैं, उसी क्षण में विनष्ट हो जाते हैं इसलिये अनेक पदों का एक काल में रहना नहीं बन सकता। तथा इस नय में जिस प्रकार पदों का समास नहीं बन सकता है, उसी प्रकार घ, ट आदि वर्णों का भी समास नहीं बन सकता, क्योंकि अनेक पदों के समास मानने में जो दोष कह आये हैं, वे सब दोष अनेक वर्णों के समास मानने में भी आते होते हैं। इसलिये एवंभूत नय की दृष्टि में एक ही वर्ण एक अर्थ का वाचक है। [जयधवल पु० १ पृ० २४१]

उपनयाश्च कथ्यन्ते ॥४२॥

सूत्रार्थ—अब उपनयों का कथन करते हैं।

उपनय के लक्षण कथन करने के लिये सूत्र कहते हैं।

नयानां समीपा उपनयाः ॥४३॥

सूत्रार्थ—जो नयों के समीप में रहें वे उपनय हैं।

विशेषार्थ—'आत्मन उपसमीपे प्रमाणादीनां वा तेषामुपसमीपं नयतीत्युपनयः।' [संस्कृत नय चक्र पृ० ४५] अर्थात् जो आत्मा के वा प्रमाणादिकों के अत्यन्त निकट पहुँचाता है वह उपनय है।

यह उपनय भी वस्तु के यथार्थ धर्म का कथन करता है, अयथार्थ धर्म का कथन नहीं करता, इसलिये इसके द्वारा भी वस्तु का यथार्थ बोध होता है।

१. आलापपद्धति सूत्र २०२।

एकेन्द्रिय जीव का उपचार। २. दर्पणरूप पर्याय में अन्य पर्यायवान् [illegible] का उपचार। किसी के प्रतिबिंब को देखकर जिसका वह प्रतिबिंब है [illegible] उस प्रतिबिंबरूप बतलाना। ३. मतिज्ञान मूर्त है—यहां विजाति ज्ञानगुण विजाति मूर्तगुण का आरोपण है। ४. जीव-अजीव ज्ञेय अर्थात् [illegible] विषयक हैं। यहां जीव-अजीव द्रव्य में ज्ञानगुण का उपचार है। ५. [illegible] बहुप्रदेशी है अर्थात् परमाणु पुद्गल द्रव्य में बहुप्रदेशी पर्याय का उपचार। ६. श्वेत प्रसाद। यहां पर श्वेत गुण में प्रसाद द्रव्य का आरोप किया है। ७. ज्ञानगुण के परिणमन में ज्ञान-पर्याय का ग्रहण, गुण में पर्याय का आरोपण है। ८. स्कंध को पुद्गल द्रव्य कहना, पर्याय में द्रव्य का उपचार है। ९. इसका शरीर रूपवान है। यहां पर शरीर रूप पर्याय में [illegible] गुण का उपचार किया गया है।[1]

मुख्य के अभाव में प्रयोजनवश या निमित्तवश जो उपचार होता है उपचरित-असद्भूत-व्यवहारनय है।[2] जैसे मार्जार (बिलाव) को सिंह कहना। यहां पर मार्जार और सिंह में सादृश्य सम्बन्ध के कारण मार्जार में सिंह का उपचार किया गया है, क्योंकि सम्बन्ध के बिना उपचार नहीं हो सकता। जैसे चूहे आदि में सिंह का उपचार नहीं किया जा सकता। सम्बन्ध अनेक प्रकार का है। जैसे—अविनाभाव सम्बन्ध, संश्लेष सम्बन्ध, [illegible] णाम-परिणामी सम्बन्ध, श्रद्धा-श्रद्धेय सम्बन्ध, ज्ञान-ज्ञेय सम्बन्ध, चारित्र [illegible] सम्बन्ध इत्यादि। ये सब उपचरित-असद्भूत-व्यवहारनय के विषय हैं। 'तत्त्वार्थ का श्रद्धान सम्यग्दर्शन है' यह उपचरित-असद्भूत-व्यवहारनय का विषय है, क्योंकि यहां पर श्रद्धा-श्रद्धेय सम्बन्ध पाया जाता है। 'ज्ञान ही उपचरित-असद्भूत-व्यवहारनय का विषय है, ज्ञेय-ज्ञायक सम्बन्ध पाया जाता है, क्योंकि जो ज्ञेय उनका ज्ञायक सर्वज्ञ होता है। इत्यादि

इदानीमेषां भेदा उच्यन्ते ॥४५॥

सूत्रार्थ—अब उनके (नयों और उपनयों के) भेदों को कहते हैं।

१. [illegible] सूत्र २१२। २. आलापपद्धति सूत्र २१२। ३. आ[illegible] [illegible]

सूत्रार्थ—उत्पाद-व्यय को गौण करके (अप्रधान करके) सत्ता (ध्रौव्य) को ग्रहण करने वाली शुद्ध द्रव्यार्थिक नय है। जैसे—द्रव्य नित्य है।

विशेषार्थ—द्रव्य का लक्षण उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य है।[1] तथा द्रव्य अनेकान्तात्मक अर्थात् नित्य-अनित्य-आत्मक है। किन्तु शुद्ध द्रव्यार्थिक नय उत्पाद-व्यय को अप्रधान करके मात्र ध्रौव्य को ग्रहण करके (नित्य-अनित्य-आत्मक) द्रव्य को नित्य बतलाती है। अनेकान्त दृष्टि में इस शुद्ध-द्रव्यार्थिक नय का विषय यथार्थ नहीं है तथापि एक धर्म को (अनित्य धर्म को) गौण करके नित्य धर्म को मुख्य करने से इस नय के विषय को सर्वथा अयथार्थ नहीं कहा जा सकता।

उप्पादव्वयं गौणं किच्चा जो गहइ केवला सत्ता।
भण्णइ सो सुद्धणओ इह सत्तागाहओ समए ॥१९॥ [नयचक्र]

अर्थात्—उत्पाद-व्यय को गौण करके मात्र ध्रुव को ग्रहण करने वाला नय आगम में सत्ताग्राहक शुद्ध नय है।

३. भेदकल्पनानिरपेक्षः शुद्धो द्रव्यार्थिको यथा निजगुण-पर्यायस्वभावाद् द्रव्यमभिन्नम् ॥४९॥

सूत्रार्थ—शुद्ध द्रव्यार्थिक नय भेदकल्पना की अपेक्षा से रहित है, जैसे—निज गुण से, निज पर्याय से और निज स्वभाव से द्रव्य अभिन्न है।

विशेषार्थ—यद्यपि संज्ञा, संख्या, लक्षण और प्रयोजन की अपेक्षा गुण और द्रव्य में, पर्याय और द्रव्य में तथा स्वभाव और द्रव्य में भेद है किन्तु प्रदेश की अपेक्षा गुण-द्रव्य में, पर्याय-द्रव्य में, स्वभाव-द्रव्य में भेद नहीं है अर्थात् अनेकान्त रूप से द्रव्य भेद-अभेद-आत्मक है।

शुद्ध द्रव्यार्थिक नय का विषय भेद नहीं है, मात्र अभेद है। भेद विवक्षा को गौण करके शुद्ध-द्रव्यार्थिक नय की अपेक्षा गुण-पर्याय-स्वभाव का द्रव्य से अभेद है, क्योंकि प्रदेश भेद नहीं है।

---

१. आलापपद्धति सूत्र ७।

विशेषार्थ--शुद्ध-द्रव्यार्थिक नय का विषय मात्र ध्रौव्य है।[1] क्योंकि उत्पाद-व्यय पर्यायार्थिक नय का विषय है। द्रव्य का लक्षण सत् है और सत् का लक्षण उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यमयी है।[2] इस प्रकार द्रव्य का लक्षण उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य रूप है, किन्तु उत्पाद-व्यय पर्यायार्थिक नय का विषय होने के कारण उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यात्मक द्रव्य को—अशुद्ध द्रव्य को—अशुद्ध द्रव्यार्थिक नय का विषय कहा है।

उप्पादवयविमिस्सा सत्ता गहिऊण भणइ तिदयत्तं।
दव्वस्स एयसमये जो हु असुद्धो हवे विदिओ ॥२२॥ [नयचक्र]

अर्थात्—उत्पाद-व्यय मिश्रित ध्रुव अर्थात् एक समय में इन तीन मयी द्रव्य को ग्रहण करने वाला दूसरा अशुद्ध नय है।

६. भेदकल्पनासापेक्षोऽशुद्धद्रव्यार्थिको यथात्मनो दर्शन-ज्ञानादयोगुणाः ॥५२॥

सूत्रार्थ—भेदकल्पना-सापेक्ष द्रव्य अशुद्ध-द्रव्यार्थिक नय का विषय है, जैसे—आत्मा के ज्ञान-दर्शनादि गुण हैं।

विशेषार्थ—आत्मा एक अखण्ड द्रव्य है, उसमें ज्ञान-दर्शन आदि गुण नहीं हैं, ऐसा शुद्ध द्रव्यार्थिक नय का प्रयोजन है। कहा भी है—

'णवि णाणं ण चरित्तं ण दंसणं जाणगो सुद्धो।'[3]

अर्थात्—आत्मा में न ज्ञान है, न चारित्र है, न दर्शन है, वह तो ज्ञायक, शुद्ध है।

आत्मा में ज्ञान, दर्शन आदि गुणों की कल्पना करना अशुद्ध-द्रव्यार्थिक नय का विषय है। अर्थात् एक अखण्ड द्रव्य में गुणों का भेद करना अशुद्ध द्रव्यार्थिक नय का विषय है।

भेदे सदि सम्बंधं गुणगुणियदीण कुणइ जो दव्वे।
सो वि असुद्धो दिट्ठो सहिओ सो भेदकप्पेण ॥२३॥ [नयचक्र]

---

१. आलापपद्धति सूत्र ४८। २. आलापपद्धति सूत्र ६ व ७।
३. समयसार गाथा ७।

सूत्रार्थ—स्वद्रव्य स्वक्षेत्र स्वकाल स्वभाव की अपेक्षा द्रव्य को अस्ति रूप से ग्रहण करने वाला नय स्वद्रव्यादिग्राहक द्रव्यार्थिक नय है।

विशेषार्थ—कल्याण पावर प्रिंटिंग प्रेस शोलापुर से प्रकाशित संस्कृत नयचक्र पृ० ३ व ५ पर इस नय का स्वरूप निम्न प्रकार कहा गया है—

'परद्रव्यादिनां विवक्षामकृत्वा स्वद्रव्यस्वक्षेत्रस्वकालस्वभावापेक्षया द्रव्यस्यास्तित्वमस्तीति स्वद्रव्यादिग्राहकद्रव्यार्थिकनयः।'

अस्तित्वं वस्तुरूपस्य स्वद्रव्यादिचतुष्टयात्।
एवं यो वक्त्यभिप्रायं स्वादिग्राहकनिश्चयः ॥८॥

अर्थ—परद्रव्यादि की विवक्षा न कर, स्वद्रव्य, स्वक्षेत्र, स्वकाल और स्वभाव की अपेक्षा से द्रव्य के अस्तित्व को अस्तिरूप से ग्रहण करने वाला नय स्वद्रव्यादिग्राहक द्रव्यार्थिक नय है। अथवा स्वद्रव्यादि चतुष्टय से वस्तु-स्वरूप का अस्तित्व बतलाना जिस नय का अभिप्राय है वह स्वद्रव्यादिग्राहक द्रव्यार्थिक नय है।

आगे सूत्र १८८ में भी इस नय का कथन है।

९. परद्रव्यादिग्राहकद्रव्यार्थिको यथा परद्रव्यादिचतुष्टयापेक्षया द्रव्यं नास्ति ॥५५॥

सूत्रार्थ—परद्रव्य परक्षेत्र परकाल परस्वभाव की अपेक्षा द्रव्य नास्ति रूप है ऐसा परद्रव्यादिग्राहक द्रव्यार्थिक नय है।

विशेषार्थ—संस्कृत नयचक्र में इस नय का स्वरूप इस प्रकार कहा गया है—

'स्वद्रव्यादीनां विवक्षामकृत्वा परद्रव्यपरक्षेत्रपरकालपरभावापेक्षया द्रव्यस्य नास्तित्वकथकः परद्रव्यादिग्राहकद्रव्यार्थिकनयः।' [पृ० ३]

नास्तित्वं वस्तुरूपस्य परद्रव्याद्यपेक्षया।
वांछितार्थेषु यो वक्ति परद्रव्याद्यपेक्षकः ॥९॥ [पृ० ५]

अर्थात्—शुद्ध और अशुद्ध के उपचार से रहित जो नय द्रव्य के स्वभाव को ग्रहण करता है वह परमभावग्राहक द्रव्यार्थिक नय है।

आगे सूत्र १९० में भी इस नय का कथन है।

अथ पर्यायार्थिकस्य षड् भेदाः ॥५७॥

सूत्रार्थ—अब पर्यायार्थिक नय के छः भेदों का कथन करते हैं—

१. अनादिनित्यपर्यायार्थिको यथा पुद्गलपर्यायो नित्यो मेर्वादिः ॥५८॥

सूत्रार्थ—अनादि-नित्य पर्यायार्थिक नय जैसे मेरु आदि पुद्गल की पर्याय नित्य है।

विशेषार्थ—मेरु, कुलाचल पर्वत, अकृत्रिम जिनबिंब-जिनालय आदि ये सब पुद्गल की पर्यायें अनादिकाल से हैं अनन्तकाल तक रहेंगी, इनका कभी विनाश नहीं होगा अतः ये अनादि-नित्य-पर्यायार्थिक नय के विषय हैं। क्योंकि सभी पर्यायें विनाश को प्राप्त हों ऐसा एकान्त नहीं है। कहा भी है—

'होदु वियंजणपज्जाओ, ण च वियंजणपज्जायस्स सव्वस्स विणासेण होदव्वमिदि णियमो अत्थि, एयंतवादप्पसंगादो। ण च ण विणस्सदि त्ति दव्वं होदि, उप्पाय-ट्ठिदि-भंगसंगयस्स दव्वभावब्भुवगमादो।' [धवल पु० ७ पृ० १७८]

अर्थ—'भव्यत्व' जीव की व्यंजन पर्याय भले ही हो, किन्तु सभी व्यंजन पर्याय का नाश अवश्य होना चाहिये, ऐसा कोई नियम नहीं है, क्योंकि ऐसा मानने से एकान्तवाद का प्रसंग आ जायगा। ऐसा भी नहीं है कि जो वस्तु विनष्ट नहीं होती वह द्रव्य ही होना चाहिये, क्योंकि जिसमें उत्पाद-ध्रौव्य और व्यय पाये जाते हैं उसे द्रव्यरूप से स्वीकार किया गया है।

प्राकृत नयचक्र में भी कहा है—

अकट्टिमा अणिहणा ससिसूराईण पज्जया णिहणा।
जो सो अणाइणिच्चो जिणभणिओ पज्जयट्ठियणओ ॥२९॥

विशेषार्थ—पर्यायार्थिक नय के प्रथम भेद का विषय अनादिनित्य पर्याय है और इस दूसरे भेद का विषय सादि-नित्य पर्याय है। सिद्धपर्याय ज्ञानावरणादि आठों कर्मों के क्षय से उत्पन्न होती है अतः सादि है किन्तु इस पर्याय का कभी नाश नहीं होगा इसलिये नित्य है। इसी प्रकार ज्ञानावरण कर्म के क्षय से उत्पन्न होने वाला क्षायिक ज्ञान, दर्शनावरण कर्म के क्षय से उत्पन्न होने वाला क्षायिक दर्शन, मोहनीय कर्म के क्षय से उत्पन्न होने वाले क्षायिक सम्यग्दर्शन, क्षायिक चारित्र तथा अनन्त सुख, अन्तराय कर्म के क्षय से उत्पन्न होने वाले क्षायिक दान, लाभ, भोग, उपभोग, वीर्य ये सब क्षायिक भाव भी सादि-नित्य पर्याय हैं। कहा भी है—

'जीवा एव क्षायिकभावेन साद्यनिधनाः।'

[पंचास्तिकाय गा० ५३ टीका]

अर्थात्—क्षायिक भावों की अपेक्षा जीव भी सादि-अनिधन है।

इसी बात को प्राकृत नयचक्र में भी कहा गया है—

कम्मक्खयादुप्पण्णो अविणासी जो हु कारणाभावे।
इदमेवमुच्चरंतो भण्णइ सो साइणिच्च णओ॥२०१॥ [पृ० ७४]

अर्थात्—कर्मों के क्षय से उत्पन्न होने वाले भाव अविनाशी हैं, क्योंकि कर्मोदयरूप बाधक कारण का अभाव है। इन क्षायिक भावों को विषय करने वाली सादि-नित्य पर्यायार्थिक नय है।

संस्कृत नयचक्र में भी कहा है—

पर्यायार्थी भवेत्सादि व्ययेे सर्वस्य कर्मणः।
उत्पन्नसिद्धपर्यायग्राहको नित्यरूपकः॥२॥ [पृ० ६]
आदत्ते पर्यायं नित्यं सादिं च कर्मणोऽभावात्।
स सादि नित्यपर्यायार्थिकनामा नयः स्मृतः॥८॥ [पृ० ४१]

'शुद्धनिश्चयनयविवक्षामकृत्वा सकलकर्मक्षयोद्भूत चरमशरीराकारपर्यायपरिणतिरूपशुद्धसिद्धपर्यायः सादिनित्यपर्यायार्थिक नयः॥२॥ [पृ० ७]

अर्थात्—शुद्ध पर्याय की विवक्षा न कर, कर्मजनित नारकादि विभाव पर्यायों को जीवस्वरूप बतलाने वाला नय अनित्य-अशुद्ध-पर्यायार्थिक नय है।

प्राकृत नयचक्र में भी कहा है—

भणइ अणिच्चासुद्धा चउगइजीवाण पज्जया जो हु।
होइ विभावअणिच्चो असुद्धओ पज्जयत्थिणओ ॥२०५॥
[वृ० न०

अर्थात्—जो नय संसारी जीवों की चतुर्गति सम्बन्धी अनित्य अशुद्ध पर्यायों को ग्रहण करता है वह विभाव-अनित्य-अशुद्ध-पर्यायार्थिक नय है।

॥ इस प्रकार पर्यायार्थिक नय के छह भेदों का निरूपण हुआ ॥

नैगमस्त्रेधा भूतभाविवर्तमानकालभेदात् ॥९४॥

संस्कृत नय चक्र में भी कहा है—

अनिष्पन्नं क्रियारूपं निष्पन्नं गदति स्फुटं।
नैगमो वर्तमानः स्यादोदनं पच्यते यथा ॥२॥ [पृ० १२]

अर्थात्—अपूर्ण क्रियारूप को जो निष्पन्न-पूर्ण बतलाता है वह वर्तमान नैगमनय है। जैसे—भात पकाया जाता है।

'वसतिं करोमि, ओदनं पक्वान्नं पचामि, वाहं करोमीत्यादि-निष्पन्नक्रियाविशेषानुद्दिश्य निष्पन्ना इति वदनं वर्तमाननैगमनयः।' [पृ० १०]

अर्थ—मैं वसतिका बनाता हूँ, भात को, पक्वान्न को पकाता हूँ, इत्यादि अपूर्ण क्रिया विशेषों को लक्ष्य करके 'पक गये' ऐसा कहना वर्तमान नैगम नय है।

॥ इस प्रकार नैगम नय के तीनों भेदों का निरूपण हुआ।

अर्थ—जीव समूह, अजीव समूह, हाथियों का झुण्ड, घोड़ों का झुण्ड, रथों का समूह, पैदल चलने वाले सैनिकों का समूह, निंबू, जामुन, आम व नारियल का समूह; इसी प्रकार द्विजवर, वणिक्श्रेष्ठ, कोटपाल आदि अठारह श्रेणी के निचय इत्यादिक दृष्टांतों के द्वारा प्रत्येक जाति के समूह को नियम से एकवचन द्वारा स्वीकार करके कथन करना विशेष संग्रह नय है।

॥ इस प्रकार संग्रह नय के दोनों भेदों का कथन हुआ ॥

व्यवहारोऽपि द्वेधा ॥७१/१॥

सूत्रार्थ—व्यवहारनय भी दो प्रकार का है (१) सामान्य (२) विशेष।

विशेषार्थ—संस्कृत नयचक्र में कहा भी है—

यः संग्रहग्रहीतार्थे शुद्धाशुद्धे विभेदकः।
शुद्धाशुद्धाभिधानेन व्यवहारो द्विधा मतः ॥१७॥ [पृ० ४२]

अर्थ—शुद्ध (सामान्य) संग्रह नय द्वारा ग्रहीत अर्थ की भेदक तथा अशुद्ध (विशेष) संग्रह नय द्वारा ग्रहीत अर्थ की भेदक व्यवहार नय भी शुद्ध, अशुद्ध (सामान्य, विशेष) के अभिधान से दो प्रकार का है।

सामान्य व्यवहार नय का स्वरूप—

सामान्यसंग्रहभेदको व्यवहारो यथा द्रव्याणि जीवाजीवाः ॥७१/२॥

सूत्रार्थ—सामान्यसंग्रह नय के विषयभूत पदार्थ में भेद करने वाला सामान्यसंग्रहभेदक व्यवहारनय है। जैसे—द्रव्य के दो भेद हैं—जीव और अजीव।

विशेषार्थ—संस्कृत नयचक्र में इस नय का स्वरूप इस प्रकार कहा है—

सामान्यसंग्रहस्यार्थे जीवाजीवादि भेदतः।
भिनत्ति व्यवहारोयं शुद्धसंग्रहभेदकः ॥१॥ [पृ० १५]

'अनेन सामान्यसंग्रहनयेन स्वीकृतसत्ता सामान्यरूपार्थं भित्वा जीवपुद्गलादिकथनं, सेनाशब्देन स्वीकृतार्थं भित्वा हस्त्यश्वरथपदाति-

[illegible] ... सगो भवदि ।' [illegible]

अर्थ — जो विशेषसंग्रह नय के विषयभूत जीवादि पदार्थों को अनेक भेद-प्रभेद से [illegible] करता है वह अशुद्धसंग्रह (विशेषसंग्रह) भेदक व्यवहार नय है। विशेषसंग्रह नय के द्वारा [illegible] को भेद करके [illegible] और [illegible] का कथन करना; हाथी, घोड़े, रथ, प्यादों का भेद [illegible] हाथी, सुन्दर घोड़ा, महारथ, [illegible], महाभट आदि [illegible] कहना; [illegible], जामुन, जंभीर, नारंगी, नारियल और आम के समूह को भेद करके [illegible], [illegible] को, मधुर आम के रस की विशेषता को, सुगन्धता को, [illegible] वर्ण-विशेषता को, ह्रस्व-दीर्घता को, सफलता-निष्फलता आदि [illegible] कहना; रथों को, [illegible], कोतवाल आदि अठारह श्रेणी-समूह के भेद कर बतलाने को, सघनता-निर्धनता को, कुशलता-अकुशलता को, योग्यता-अयोग्यता को, कृशपन व मोटापे को, कुरूपता-सुरूपता को, स्त्री-पुरुष-नपुंसक को, कर्मफल को, सदाचरण-असदाचरण को कहना, इत्यादि अनेक विषयों को भेद करके कहना विशेष-संग्रह-भेदक-व्यवहारनय है।

॥ इस प्रकार व्यवहार नय के दोनों भेदों का निरूपण हुआ ॥

ऋजुसूत्रोपि द्विविधः ॥७३॥

सूत्रार्थ—ऋजुसूत्र नय भी दो प्रकार का है। अर्थात्—(१) सूक्ष्मऋजुसूत्र नय (२) स्थूलऋजुसूत्र नय। ऋजुसूत्र नय का विशेष कथन सूत्र ४१ की टीका में है।

स्थूलऋजुसूत्र नय है। जैसे [illegible] पर्यायें अपनी अपनी आयु प्रमाण काल तक रहती हैं।

विशेषार्थ—[illegible] में स्थूलऋजुसूत्र नय का स्वरूप इस प्रकार कहा है

मुणुवाइयपज्जाओ मणुसोत्ति सगट्ठिदीसु वट्टंतो।
जो भणइ तावकालं सो थूलो होइ रिउसुत्तो ॥२१२॥ [पृ० ७७

अर्थात्—अपनी स्थिति पर्यंत रहने वाली मनुष्य आदि पर्याय को उतने काल तक जो नय मनुष्य आदि कहता है वह स्थूलऋजुसूत्र नय है।

संस्कृत नयचक्र में इस प्रकार कहा है—

यो नरादिकपर्यायं स्वकीयस्थितिवर्तनं।
तावत्कालं तथा चष्टे स्थूलाख्यऋजुसूत्रकः ॥१९॥ [पृ० ४२]

मनुष्यादि पर्यायें अपनी-अपनी स्थिति काल तक रहती हैं। उतने काल तक मनुष्य आदि कहना स्थूलऋजुसूत्र नय है।

'नरनारकादिघटपटादिव्यंजनपर्यायेषु जीवपुद्गलाभिधानरूपवस्तूनि परिणतानीति स्थूलऋजुसूत्रनयः [पृ० १६]। व्यंजनपर्यायापेक्षया प्रारम्भतः प्रारभ्य अवसान यावद्भवतीति निश्चयः कर्तव्य इति तात्पर्यं।' [पृ० १७]

अर्थ—नर-नारक आदि और घट-पट आदि व्यंजन पर्यायों में जीव और पुद्गल नामक पदार्थ परिणत हुए हैं। इस प्रकार का विषय स्थूलऋजुसूत्र नय का है। व्यंजनपर्याय की अपेक्षा प्रारम्भ से अवसान तक वर्तमान पर्याय निश्चय करना चाहिये।

॥ इस प्रकार ऋजुसूत्र नय के दोनों भेदों का कथन हुआ ॥

शब्दसमभिरूढैवंभूता नयाः प्रत्येकमेकैका नयाः ॥७६॥

सूत्रार्थ—शब्द नय, समभिरूढ नय और एवंभूत नय इन तीनों नयों में से प्रत्येक नय एक एक प्रकार का है। शब्द नय एक प्रकार का है, समभिरूढ

आदि के दोष को दूर करता है। दूसरा मत है कि शब्द नय की दृष्टि में लिंग, संख्या, साधन आदि का दोष नहीं है।

समभिरूढनयो यथा गौः पशुः ॥७८॥

सूत्रार्थ—नाना अर्थों को 'सम' अर्थात् छोड़कर प्रधानता से एक अर्थ में रूढ होता है वह समभिरूढ है। जैसे—'गो' शब्द के वचन आदि अनेक अर्थ पाये जाते हैं तथापि वह 'पशु' अर्थ में रूढ है।

विशेषार्थ—समभिरूढ नय का स्वरूप विस्तारपूर्वक सूत्र ४१ की टीका में कहा जा चुका है। आगे सूत्र २०१ में भी इसका लक्षण कहेंगे।

एवंभूतनयो यथा इन्दतीति इन्द्रः ॥७९॥

सूत्रार्थ—जिस नय में वर्तमान क्रिया ही प्रधान होती है वह एवंभूतनय है। जैसे—जिस समय देवराज इन्दन क्रिया को करता है उस समय ही इस नय की दृष्टि में वह इन्द्र है।

विशेषार्थ—सूत्र ४१ की टीका में एवंभूत नय का स्वरूप सविस्तार कहा जा चुका है। आगे सूत्र २०२ में भी इसका स्वरूप कहा जायगा।

॥ द्रव्यार्थिक नय के १० भेद, पर्यायार्थिक नय के ६ भेद, नैगम नय के ३ भेद, संग्रहनय के २ भेद, व्यवहार नय के २ भेद, ऋजुसूत्र नय के २ भेद, शब्द नय, समभिरूढनय और एवंभूतनय ये तीन, इस प्रकार नय के २८ भेदों का कथन हुआ ॥

उपनयभेदा उच्यन्ते ॥८०॥

सूत्रार्थ—उपनय के भेदों को कहते हैं।

विशेषार्थ—उपनय का लक्षण सूत्र ४३ में कहा जा चुका है। उसके तीन मूल भेद हैं—१. सद्भूत, २. असद्भूत, ३. उपचरित असद्भूत व्यवहारनय।

सद्भूतव्यवहारो द्विधा ॥८१॥

सूत्रार्थ—सद्भूत व्यवहारनय दो प्रकार का है।

विभागैकलक्षणं कथयन् अशुद्धसद्भूतव्यवहारोपनयः।'

[संस्कृत नयचक्र पृ० २१]

अर्थात्—संज्ञा, लक्षण, प्रयोजन के द्वारा भेद करके अशुद्ध द्रव्य में गुण और गुणी के विभाग रूप मुख्य लक्षण को कहने वाला अशुद्ध-सद्भूतव्यवहार नय है।

॥ इस प्रकार सद्भूत-व्यवहारनय के दोनों भेदों का कथन हुआ ॥

असद्भूतव्यवहारस्त्रेधा ॥८४॥

सूत्रार्थ—असद्भूतव्यवहारनय तीन प्रकार की है।

विशेषार्थ—असद्भूत व्यवहारनय का लक्षण सूत्र ४४ की टीका में कहा जा चुका है और आगे भी सूत्र २०७ में कहेंगे। संस्कृत नयचक्र में भी कहा है—

'यदन्यस्य प्रसिद्धस्य धर्मस्यान्यत्र कल्पना असद्भूतो भवेद्धावः।'

[पृ० २२]

अर्थ—अन्य के प्रसिद्ध धर्म को किसी अन्य में कल्पित करना सो असद्भूतव्यवहारनय है।

असद्भूतव्यवहारनय के तीन भेद हैं—(१) स्वजात्यसद्भूतव्यवहारनय, (२) विजात्यसद्भूतव्यवहारनय, (३) स्वजातिविजात्यसद्भूतव्यवहारनय।

स्वजात्यसद्भूतव्यवहारनय का लक्षण—

स्वजात्यसद्भूतव्यवहारो यथा परमाणुर्बहुप्रदेशीति कथनमित्यादि ॥८५॥

सूत्रार्थ—स्वजाति-असद्भूत-व्यवहारनय जैसे परमाणु को बहुप्रदेशी कहना, इत्यादि।

विशेषार्थ—जो नय स्वजातीय द्रव्यादिक में स्वजातीय द्रव्यादि के सम्बन्ध से होने वाले धर्म का आरोपण करता है वह स्वजात्यसद्भूतव्यवहारनय है। जैसे—परमाणु बहुप्रदेशी है। परमाणु अन्य परमाणुओं के सम्बन्ध से बहु-

गुण-व्युत्पत्ति अधिकार

सहभुवो गुणाः, क्रमवर्तिनः पर्यायाः ॥९२॥

सूत्रार्थ—साथ में होने वाले गुण हैं और क्रम क्रम से होने वाली पर्यायें हैं। अर्थात् अन्वयी गुण हैं और व्यतिरेक परिणाम पर्यायें हैं।

विशेषार्थ—संस्कृत नयचक्र में पृ० ५७ पर भी कहा है—

'सहभुवो गुणाः। क्रमभाविनः पर्यायाः।'

अर्थ—साथ में होने वाला गुण है और क्रमवर्ती पर्यायें हैं।

ऐसा नहीं है कि द्रव्य पहिले हो और बाद में गुणों से सम्बन्ध हुआ हो। किन्तु द्रव्य और गुण अनादि काल से हैं, इनका कभी भी विच्छेद नहीं होता है अतः गुण का लक्षण 'सहभुवः' कहा है। अथवा जो निरन्तर द्रव्य में रहते हैं और अन्य गुण से रहित हैं वे गुण हैं। [मोक्षशास्त्र ५/४१]

विशेष गुण का लक्षण—

गुण्यते पृथक्क्रियते द्रव्यं द्रव्याद्यैस्तेगुणाः ॥९३॥

सूत्रार्थ—जिनके द्वारा एक द्रव्य दूसरे द्रव्य से पृथक् किया जाता है, वे (विशेष) गुण कहलाते हैं।

विशेषार्थ—संस्कृत नयचक्र पृ० ५७ पर भी कहा है—

'गुणव्युत्पत्तिर्गुण्यते पृथक् क्रियते द्रव्याद्द्रव्यं येनासौ विशेषगुणः।'

अर्थ—जिसके द्वारा एक द्रव्य दूसरे द्रव्य से पृथक् किया जाता है वह विशेषगुण है, यह गुण का व्युत्पत्ति अर्थ है।

सामान्यगुण और विशेषगुण के भेद से गुण दो प्रकार के हैं। सामान्यगुण सब द्रव्यों में पाये जाते हैं। उन सामान्यगुणों के द्वारा तो एक द्रव्य दूसरे द्रव्य से पृथक् नहीं किया जा सकता, विशेषगुणों के द्वारा ही एक द्रव्य दूसरे द्रव्य से पृथक् किया जा सकता है। अतः गुण का यह व्युत्पत्ति अर्थ विशेष गुण में ही घटित होता है और 'सहभुवो गुणाः' अथवा 'द्रव्याश्रया

[illegible] आकाश प्रदेश के द्वारा जो [illegible], [illegible], आकाशद्रव्य, जीव-द्रव्य और कालद्रव्य ये प्रदेशों की गणना की जाती है।

चेतनस्य भावश्चेतनत्वम् चैतन्यमनुभवनम् ॥१०१॥

चैतन्यमनुभूतिः स्यात् सा क्रियारूपमेव च ।
क्रिया मनोवचःकायेष्वन्विता वर्तते ध्रुवम् ॥६॥

सूत्रार्थ—चेतन के भाव को अर्थात् पदार्थों के अनुभव को चेतनत्व कहते हैं।

गाथार्थ—चैतन्य नाम अनुभूति का है। वह अनुभूति क्रियारूप अर्थात् कर्तव्यस्वरूप ही होती है। मन, वचन, काय में अन्वित (सहित) वह क्रिया नित्य होती रहती है।

विशेषार्थ—जीवाजीवादि पदार्थों के अनुभवन को, जानने को चेतना कहते हैं। वह अनुभवन ही अनुभूति है। अथवा द्रव्यस्वरूप चिंतन को अनुभूति कहते हैं। श्री अमृतचन्द्राचार्य ने पंचास्तिकाय गाथा ३९ की टीका में लिखा है—

'चेतयंते अनुभवन्ति उपलभंते विदंतीत्येकार्थाश्चेतनानुभूत्युपलब्धिवेदनानामेकार्थत्वात् ।'

अर्थ—चेतता है, अनुभव करता है, उपलब्ध करता है और वेदता है ये एकार्थ हैं क्योंकि चेतना, अनुभूति, उपलब्धि और वेदना का एकार्थ है।

अचेतनस्य भावोऽचेतनत्वमचैतन्यमननुभवनम् ॥१०२॥

सूत्रार्थ—अचेतन के भाव को अर्थात् पदार्थों के अननुभवन को अचेतनत्व कहते हैं।

विशेषार्थ—जीव के अतिरिक्त पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल ये पांचों द्रव्य अचेतन हैं, जड़ हैं, क्योंकि इनमें जानने की शक्ति अर्थात् अनुभवन का अभाव है।

मूर्तस्य भावो मूर्तत्वं रूपादिमत्त्वम् ॥१०३॥

अर्थात्—परस्वरूप की अपेक्षा अभाव होने से नास्तिस्वभाव है।

सूत्र में 'अभावात्' शब्द का अर्थ अभवनात् है।

निज-निज-नानापर्यायेषु तदेवेदमिति द्रव्यस्योपलम्भान्नित्य-स्वभावः ॥१०८॥

सूत्रार्थ—अपनी अपनी नाना पर्यायों में 'यह वही है' इस प्रकार द्रव्य की प्राप्ति 'नित्य स्वभाव' है।

विशेषार्थ—ध्रुवत्व अंश की अपेक्षा से अथवा सामान्य अंश की अपेक्षा से द्रव्य नित्य स्वभावी है जो द्रव्यार्थिक नय का विषय है। अर्थात् द्रव्यार्थिक नय की अपेक्षा द्रव्य नित्य है।

तस्याप्यनेकपर्यायपरिणामितत्वादनित्यस्वभावः ॥१०९॥

सूत्रार्थ—उस द्रव्य का अनेक पर्यायरूप परिणत होने से अनित्य स्वभाव है।

विशेषार्थ—प्रतिसमय उत्पाद व्यय की दृष्टि से द्रव्य परिणमनशील होने से अथवा पर्यायार्थिक नय की अपेक्षा द्रव्य अनित्यस्वभावी है। प्रमाण की अपेक्षा द्रव्य नित्यानित्यात्मक है।

स्वभावानामेकाधारत्वादेकस्वभावः ॥११०॥

सूत्रार्थ—सम्पूर्ण स्वभावों का एक आधार होने से एक स्वभाव है।

विशेषार्थ—अनेक गुणों, पर्यायों और स्वभावों का एक द्रव्य सामान्य आधार होने से द्रव्य एक स्वभावी है। संस्कृत नयचक्र पृ० ६५ पर कहा भी है-

'सामान्यरूपेणैकत्वमिति।'

अर्थात्—सामान्य की अपेक्षा एक स्वभाव है।

एकस्याप्यनेकस्वभावोपलम्भादनेक स्वभावः ॥१११॥

सूत्रार्थ—एक ही द्रव्य के अनेक स्वभावों की उपलब्धि होने से 'अनेक स्वभाव' है।

विशेषार्थ—एक ही द्रव्य नाना गुणों, पर्यायों और स्वभावों का आधार

[illegible]

अभाव हो जायगा। अर्थक्रियाकारित्व का अभाव हो जाने से द्रव्य का भी अभाव हो जायगा। श्री अमृतचन्द्राचार्य ने प्रवचनसार गाथा ११० की टीका में कहा भी है—

'न खलु द्रव्यात्पृथग्भूतो गुण इति वा पर्याय इति वा कश्चिदपि स्यात्। यथा सुवर्णात्पृथग्भूतं तत्पीतत्वादिकमिति वा तत्कुण्डलादिकत्वमिति वा।'

अर्थ—निश्चय नय से द्रव्य से पृथग्भूत कोई भी गुण या पर्याय नहीं होती। जैसे—सुवर्ण का पीलापन गुण तथा कुण्डलादि पर्यायें सुवर्ण से पृथग्भूत नहीं होतीं।

अभेदपक्षेऽपि सर्वेषामेकत्वम्, सर्वेषामेकत्वेऽर्थक्रियाकारित्वाभावः, अर्थक्रियाकारित्वाभावे द्रव्यस्याप्यभावः ॥१३४॥

सूत्रार्थ—सर्वथा अभेद पक्ष में गुण-गुणी, पर्याय-पर्यायी सम्पूर्ण पदार्थ एकरूप हो जायेंगे। सम्पूर्ण पदार्थों के एकरूप हो जाने पर अर्थक्रियाकारित्व का अभाव हो जायगा और अर्थक्रियाकारित्व के अभाव में द्रव्य का भी अभाव हो जायगा।

विशेषार्थ—प्रवचनसार गाथा २७ की टीका में श्री जयसेन आचार्य ने कहा है—

'यदि पुनरेकान्तेन ज्ञानमात्मेति भण्यते तदा ज्ञानगुणमात्र एवात्मा प्राप्तः सुखादिधर्माणामवकाशो नास्ति। तथा सुखवीर्यादिधर्मसमूहाभावादात्माऽभावः, आत्मन आधारभूतस्याभावादाधेयभूतस्य ज्ञानगुणस्याप्यभावः, इत्येकान्ते सति द्वयोरप्यभावः।'

अर्थ—यदि एकान्त से ज्ञान ही आत्मा है, ऐसा कहा जाय तब ज्ञानगुण मात्र ही आत्मा प्राप्त होगा, फिर सुख आदि स्वभावों का अवकाश नहीं रहेगा तथा सुख, वीर्य आदि स्वभावों के समुदाय का अभाव होने से आत्मा का अभाव हो जायगा। जब आधारभूत आत्मा का अभाव हो गया, तब

[illegible]

सर्वथाशब्दः सर्वप्रकारवाची, अथवा सर्वकालवाची अथवा नियमवाची वा, अनेकान्तसापेक्षी वा ? यदि सर्वप्रकारवाची सर्वकालवाची अनेकान्तवाची वा, सर्वादिगणे पठनात् सर्वशब्द, एवं विधश्चेत्तर्हि सिद्धं नः समीहितम् । अथवा नियमवाची चेत्तर्हि सकलार्थानां तव प्रतीतिः कथं स्यात् ? नित्यः अनित्यः एकः अनेकः भेदः अभेदः कथं प्रतीतिः स्यात् नियमितपक्षत्वात् ? ॥१४०॥

विशेषार्थ—सूत्र ३५ में, प्रत्यक्ष और परोक्ष—प्रमाण के ऐसे दो भेद किये गये थे। यहां पर सविकल्प और निर्विकल्प की अपेक्षा प्रमाण के दो भेद किये गये हैं। जिस ज्ञान में प्रयत्नपूर्वक, विचारपूर्वक या इच्छापूर्वक पदार्थ को जानने के लिये उपयोग लगाना पड़े वह सविकल्प है। इससे विपरीत निर्विकल्प है।

सविकल्प ज्ञान का लक्षण तथा भेद—

सविकल्पं मानसं तच्चतुर्विधम् मतिश्रुतावधिमनःपर्ययरूपम् ॥१७६॥

सूत्रार्थ—मानस अर्थात् विचार या इच्छा सहित ज्ञान सविकल्प ज्ञान है। वह चार प्रकार का है—१. मतिज्ञान, २. श्रुतज्ञान, ३. अवधिज्ञान, ४. मनःपर्ययज्ञान।

विशेषार्थ—मतिज्ञान और श्रुतज्ञान का कथन सूत्र ३८ में और अवधि, मनःपर्यय ज्ञान का कथन सूत्र ३६ में हो चुका है। ये चारों ज्ञान विचार-सहित या इच्छा सहित होते हैं इसलिये इनको सविकल्प कहा है। यहां पर मन का अर्थ इच्छा या विचार है।

निर्विकल्पं मनोरहितं केवलज्ञानम् ॥१८०॥

सूत्रार्थ—मन रहित अथवा विचार या इच्छा रहित ज्ञान निर्विकल्प ज्ञान है। केवलज्ञान निर्विकल्प है।

विशेषार्थ—सूत्र ३७ में केवलज्ञान का कथन है। सूत्र १७६ व १८० में विकल्प का अर्थ मन किया है। यहां मन से अभिप्राय इच्छा या विचार का है। केवलज्ञान इच्छा या विचार रहित होता है, अतः केवलज्ञान को मनोरहित अर्थात् निर्विकल्प कहा गया है।

॥ इस प्रकार प्रमाण व्युत्पत्ति का कथन हुआ ॥

[illegible]

[illegible]

[illegible]

सूत्रार्थ—परद्रव्य, परक्षेत्र, परकाल, परस्वभाव अर्थात् परचतुष्टय को ग्रहण करना जिसका प्रयोजन है वह परद्रव्यादिग्राहक द्रव्यार्थिक नय है।

विशेषार्थ—इसका विशेष कथन सूत्र ५५ में है।

परमभावग्रहणमर्थः प्रयोजनमस्येति परमभावग्राहकः ॥१६०॥

सूत्रार्थ—परमभावग्रहण करना जिसका प्रयोजन है वह परमभाव द्रव्यार्थिक नय है।

विशेषार्थ—इस नय का विशेष कथन सूत्र ५६ में है।

॥ इस प्रकार द्रव्यार्थिक नय की व्युत्पत्ति का कथन हुआ ॥

पर्यायार्थिक नय का कथन

पर्याय एवार्थः प्रयोजनमस्येति पर्यायार्थिकः ॥१६१॥

सूत्रार्थ—पर्याय ही जिसका प्रयोजन है वह पर्यायार्थिक नय है।

विशेषार्थ—सूत्र ४१ के विशेषार्थ में इसका विशेष कथन है।

अनादिनित्यपर्याय एवार्थः प्रयोजनमस्येत्यानादिनित्यपर्यायार्थिकः ॥१६२॥

सूत्रार्थ—अनादि, नित्य पर्याय जिसका प्रयोजन है वह अनादि-नित्य पर्यायार्थिक नय है।

विशेषार्थ—मेरु आदि, पुद्गल द्रव्य की अनादि-नित्य पर्याय है। इस नय का विशेष कथन सूत्र ५८ में है।

सादिनित्यपर्याय एवार्थः प्रयोजनमस्येति सादिनित्यपर्यायार्थिकः ॥१६३॥

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

वयणं तु समभिरूढं णारयकम्मस्स बंधगो जइया।
तइया सो णेरइओ णारयकम्मेण संजुत्तो ॥५॥
णिरयगइं संपत्तो जइया अणुहवइ णारयं दुक्खं।
तइया सो णेरइओ एवंभूदो णओ भणदि ॥६॥

अर्थ—किसी मनुष्य को पापी जीवों का समागम करते हुए देखकर नैगम नय से कहा जाता है कि यह पुरुष नारकी है। [जब वह मनुष्य प्राणिवध करने का विचार कर सामग्री का संग्रह करता है तब वह संग्रह नय से नारकी है।] जब कोई मनुष्य हाथ में धनुष और बाण लिये मृगों की खोज में भटकता फिरता है तब वह व्यवहार नय से नारकी कहलाता है। जब आखेट-स्थान पर बैठकर पापी, मृगों पर आघात करता है तब वह ऋजुसूत्र नय से नारकी है। जब जन्तु प्राणों से विमुक्त कर दिया जाय तभी वह आघात करने वाला, हिंसा कर्म से संयुक्त मनुष्य, शब्द नय से नारकी है। जब मनुष्य नारक कर्म का बंधक होकर नारक कर्म से संयुक्त हो जाय तब वह समभिरूढ नय से नारकी है। जब वही मनुष्य नारक गति को पहुँच कर नरक के दुःख अनुभव करने लगता है तब वह एवंभूत नय से नारकी है।

शुद्धाशुद्धनिश्चयौ द्रव्यार्थिकस्य भेदौ ॥२०३॥

सूत्रार्थ—शुद्धनिश्चय नय और अशुद्धनिश्चय नय ये दोनों द्रव्यार्थिक नय के भेद हैं।

निश्चयनय का लक्षण—

अभेदानुपचारितया वस्तुनिश्चीयत इति निश्चयः ॥२०४॥

सूत्रार्थ—अभेद और अनुपचारता से जो नय वस्तु का निश्चय करे वह निश्चय नय है।

विशेषार्थ—गुण-गुणी पर्याय-पर्यायी का भेद अथवा द्रव्य में पर्याय या गुण-भेद निश्चय नय का विषय नहीं है, जैसा कि समयसार गाथा ६ व ७ में कहा गया है। अन्य द्रव्य के सम्बन्ध से द्रव्य में [illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

चूहे में सिंह का उपचार नहीं किया जाता है।

टिप्पण अनुसार—यदि यहां कोई प्रश्न करे कि उपचार नय पृथक् क्यों कहा गया, यह तो व्यवहारनय का ही भेद है इसलिये व्यवहारनय का ही कथन करना चाहिये था—तो इसका उत्तर दिया जाता है कि उपचार के कथन बिना, किसी भी एक कार्य की सिद्धि नहीं होती। जहाँ पर मुख्य वस्तु का अभाव हो, वहां पर प्रयोजन या निमित्त के उपलब्ध होने पर उपचार की प्रवृत्ति की जाती है। वह उपचार भी सम्बन्ध के बिना नहीं होता। इस प्रकार उपचरित असद्भूत व्यवहार नय की प्रवृत्ति होती है। इसलिये उपचरित नय भिन्न रूप से कही गई है। सूत्र ४४ के विशेषार्थ में भी इस नय का कथन है। इसके भेदों का कथन सूत्र ८८ से ९१ तक है।

सम्बन्ध का कथन—

सोऽपि सम्बन्धोऽविनाभावः, संश्लेषः सम्बन्धः, परिणामपरिणामिसम्बन्धः, श्रद्धाश्रद्धेयसम्बन्धः, ज्ञानज्ञेयसम्बन्धः, चारित्रचर्यासम्बन्धश्चेत्यादि, सत्यार्थः असत्यार्थः सत्यासत्यार्थश्चेत्युपचरितासद्भूतव्यवहारनयस्यार्थः ॥२१३॥

सूत्रार्थ – वह सम्बन्ध भी सत्यार्थ अर्थात् स्वजाति पदार्थों में, असत्यार्थ अर्थात् विजाति पदार्थों में तथा सत्यासत्यार्थ अर्थात् स्वजाति-विजाति, उभय पदार्थों में निम्न प्रकार का होता है—१. अविनाभावसम्बन्ध, २. संश्लेष सम्बन्ध, ३. परिणामपरिणामिसम्बन्ध, ४. श्रद्धाश्रद्धेयसम्बन्ध, ५. ज्ञानज्ञेयसम्बन्ध, ६. चारित्रचर्या सम्बन्ध इत्यादि।

विशेषार्थ—इस नय का कथन सूत्र ८८ में भी है। इत्यादि से निमित्त नैमित्तिक सम्बन्ध, स्वस्वामी सम्बन्ध, वाच्य-वाचक सम्बन्ध, प्रमाण-प्रमेय सम्बन्ध, बंध्य-बंधक सम्बन्ध, वद्धय-घातक सम्बन्ध आदि को भी ग्रहण कर लेना चाहिये। ये सम्बन्ध यथार्थ हैं। यदि इनको यथार्थ न माना जाये तो संसार का, मोक्ष का, मोक्ष-मार्ग का, ज्ञान का और ज्ञेयों का, प्रमाण और प्रमेयों अर्थात् द्रव्यों का भी अभाव हो जायगा। सर्वज्ञ का भी अभाव हो

परिशिष्ट—२

अर्थक्रियाकारित्व

"अनुवृत्तव्यावृत्तप्रत्ययगोचरत्वात्पूर्वोत्तराकारपरिहारा वाप्तिस्थिति-लक्षणपरिणामेनार्थक्रियोपपत्तेश्च ।"[1]

वस्तु अनुवृत्त (सामान्य अथवा गुण) और व्यावृत्त (पर्याय) रूप से दिखाई देती है तथा पूर्व पर्याय का परिहार (नाश) और स्थिति (ध्रौव्य) रूप परिणमन से अर्थक्रिया की उत्पत्ति होती है ।

अर्थक्रियाविरोधादिति=कार्यकर्तृत्वायोगात्[2]

सामान्य-विशेषात्मक वस्तु में उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य रूप अर्थक्रिया होती है ।

'त्रिलक्षणाभावतः अवस्तुनि परिच्छेदलक्षणार्थ क्रियाभावात ।"[3]

उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य रूप लक्षणत्रय का अभाव होने के कारण अवस्तु स्वरूप जो ज्ञान उसमें परिच्छित्ति रूप अर्थक्रिया का अभाव है । जैसे-जैसे ज्ञेयों में उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य रूप परिणमन होता है उस ही के अनुसार ज्ञान में भी जानने की अपेक्षा उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य होता रहता है । जो पर्याय प्रति-क्षण उत्पन्न होती है उस पर्याय को ज्ञान सद्भाव रूप से जानता है । जो उत्पन्न होकर विनष्ट हो चुकी हैं या अनुत्पन्न हैं उनको अभाव रूप से जानता है, अन्यथा ज्ञेयों के अनुकूल ज्ञान में परिणमन नहीं बन सकता ।[4]

स्वामिकार्तिकेयानुप्रेक्षा में भी कहा है—

जं वत्थु अणेयंतं तं चिय कज्जं करेदि णियमेण ।
बहुधम्मजुदं अत्थं कज्जकरं दीसदे लोए ॥ २२५ ॥
एयंतं पुणु दव्वं कज्जं ण करेदि लेसमेत्तं पि ।
जे पुणु ण करदि कज्जं तं वुच्चदि केरिसं दव्वं ॥२२६॥

---

१. श्लोकवार्तिक भाग ६ पृ० ३५६ । २. प्रमेयरत्नमाला पृ० २६४ ।
३. धवल पु० ६ पृ० १४२ । ४. धवल पु० १ पृ० १६८ ।

[illegible]

[illegible] [illegible] [illegible] [

परिशिष्ट–४

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

भेदात्मक मानने पर उसका अवाच्यरूप आधार से लिखा नहीं किया जा सकता, अतः संसर्ग दोष आता है ॥६॥ संसर्ग होने से उसका ठीक ज्ञान नहीं हो पाता, अतः अव्यतिप्ति नामक दोष आता है ॥७॥ ठीक प्रतिपत्ति के न होने से असंभव नाम का दोष भी आता है ॥८॥

निरपेक्ष, एकान्त दृष्टि में ये आठों दोष सम्भव हैं। सापेक्ष, अनेकान्त दृष्टि में इन आठ दोषों में से एक दोष भी सम्भव नहीं है।

जो गुण और गुणी (द्रव्य) में सर्वथा भेद मानते हैं, उनके मत में उपर्युक्त आठों दोष सम्भव हैं, जो गुण और गुणी का सर्वथा अभेद मानते हैं, उनके मत में उपर्युक्त आठों दोष सम्भव हैं तथा जो भेद और अभेद को परस्पर सापेक्ष नहीं मानते हैं उनके मत में भी उपर्युक्त आठों दोष सम्भव हैं। किन्तु, भेद और अभेद को सापेक्ष मानने वाले स्याद्वादियों के मत में उक्त आठ दोष सम्भव नहीं हैं क्योंकि, वस्तुस्वरूप अनेकान्तात्मक है।

ব্যক্তিনামিক ও বিশেষ শব্দের সূচী

শব্দ	পৃষ্ঠা
[illegible]	[illegible]

सादि स्वभाव	७, ८, १९, २५, ७३, ७४, १४९, १६९
सिद्ध स्वभाव	७, ८, १९, २५, ७३, ७४, १५०, १५८, १६९
सिद्धिकरण नय	२८, १८१
सिद्धिकरण प्रमाण	२८, १७९, १८०
सिद्धिय नय	१०, ३१, ३४, ९३, १९०, १९८, १९९, २००
सिद्धेव	२८, १८२
सैगम नय	११, १३, १४, ३०, ९५, ११८, ११९, १२०, १२१, १८७
सोकर्म	१७१, १७२, १७३
परदर्शक	९, २१, ७५
परद्रव्यादिग्राहक द्रव्यार्थिकनय	१२, २९, ११०, १८५
परमभावग्राहक द्रव्यार्थिकनय	१२, ३०, १११, १८६
परम स्वभाव	७, ८, २०, ७३, ७५
परमाणु	९, ७, १८, ६४, ६५, ६६, ६७, ८१, १७४, १७६
परज्ञता	९, २१, ७५
पर्याय	१, ४, १७, १९, ३६, ५१, ६९, ७०, ७२, १४०, १४१, १४२, १४८, १८६
पर्यायार्थिक नय	११, १३, ३०, ७०, ९४, ९५, ११२, ११३, ११४, ११५, ११६, ११७, ११८, १८६
परिणाम-परिणामि सम्बन्ध	३४, १९६
परोक्ष	८२, ८३
पारिणामिक भाव	२०, १५४
पुद्गल	२, ३, ९, ४१, ६९, ७१, ७६, १७७
प्रत्यक्ष	८२
प्रदेशत्व	२, १८, ४५, १४५
प्रमाण	१०, १५, २८, ८१, ८२, १६८, १७९
प्रमेयत्व	२, १७, १९, ४४, १४३
भव्य स्वभाव	७, ८, २०, २३, २६, ७३, ७५, १५२, १६१, १६३, १७१

व्यवहार नय १०, ११, १५, ३१, ३४, ३७, ९३, ९६, १०३, १२४, १२५, १२६, १३१, १८८, १९१, १९८, १९९, २०१, २०२, २०३, २०४, २०५, २०६, २०७, २०८

व्यंजन पर्याय ४, ५, ६, ५२, ५९, ६९, ७१, १२८

शब्द नय ११, १५, ३१, ९९, १२८, १८८

शुद्धद्रव्यार्थिक नय ११, २७, २९, १०५, १०६, १८४

शुद्धनिश्चय नय ३४, १९९, २००, २०१, २०२

शुद्धपर्यायार्थिक नय १३, ३०, ११६, ११७, १७८, १८७

शुद्धसद्भूतव्यवहार नय १६, १३१

शुद्ध स्वभाव ७, ९, २१, २५, २७, ७३, ७५, १५५, १

श्रद्धाश्रद्धेय सम्बन्ध १७८

श्रुतज्ञान ३४, १९६

सत् ८३, ९१, ९२, १८०

सद्भूतव्यवहार नय २, १७, २२, ४२, १४३, १५८

समभिरूढ नय ११, १६, २६, ३१, ३२, ३४, १०३, १३१

सम्बन्ध १९१, १९२, २०२, २०३, २०४

सर्वथा ११, १५, ३१, १००, १०१, १२८, १८९

सर्वज्ञ १९६

सविकल्प नय २४, १६४, १६५

सविकल्प प्रमाण ७५

सामान्य २८, १८१

सामान्य गुण २८, १७९, १८०

सामान्य स्वभाव २३, १६०

सिद्ध २, ४

सुख ७, ७३, १४१

संकरदोष ६, ९, ११, १३, १४, ६१, ६२

३, ४८, ५०, ६२

२२, १५८

शुद्धि-पत्र

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
३	४	नास्ति ।	नास्ति । धर्माधर्माकाशकाल-द्रव्येषु चेतनत्वं मूर्तत्वं च नास्ति ।
५	५	सख्यातभाग	संख्यातभाग
६	३	ध्वंसीपर्याय	ध्वंसी पर्याय
६	१५	वभाव	विभाव
६	१८	···रसैकैका···	···रसैकैका···
८	३	पृयक	पृयक्
८	१८	पर्यायेः	पर्यायैः
८	२६	गंधवर्ण	गंधवर्णं
९	९	स्वभावः	स्वभावाः
१०	१२	स्थितः	स्थिताः
१४	७	ज्ञानोत्पात्त	ज्ञानोत्पत्ति
१५	९	स्तदायुः प्रमाण	स्तदायुःप्रमाण
१५	१२	मेकैके नयाः	मेकैका नयाः
१५	१७	एवं भूत	एवंभूत
१८	२०	स्पर्शवत्वं	स्पर्शवत्त्वं
१९	१९	नेक स्वभावः	नेकस्वभावः
२०	३	चतुर्भिप्राणैः	चतुर्भिः प्राणैः
२०	४	अजीवतिति	अजीवदिति
२०	६	च्छिति मात्र	च्छितिमात्र
२५	५	प्रसङ्गः	प्रसङ्गः स्यात्
२८	४	तद्वेधा	तद्द्वेधा
२८	९	वस्तुसंगृही	वस्तु संगृही
२८	२२	गाहा	गाथा

[illegible]

७२	२३	५/ ८	५/ ३८
७६	२५	तरत्तस्या	तरत्तस्मा
८०	२०	कायाधर्म्मा	काया धर्म्मा
८०	२६	परमाण	परमाणु
१०८	२३	गुणगुणियईण	गुणगुणियाईण
१०६	३	द्रव्याथिको	द्रव्यार्थिको
१०६	८	रूवेण	रूवेण
१११	२५	गिहणइ	गिह्णइ
११२	२४	गिहणइ	गिह्णइ
११५	१०	गिहंणए	गिह्णए
११६	८	अशुद्धओ	असुद्धओ
१२२	हैडिंग	[सूत्र ६८	[सूत्र ६८
१२५	१०	जलाकार	जालकार
१२८	१४	जोवपुद्गला	जीवपुद्गला
१२६	२३	भणिओ पुस्सा	भणिओ णेओ पुस्सा
१४४	हैडिंग	[सूत्र ६६	[सूत्र ६६ गाथा ५
१५७	१४	दा	दो
१७२	१८	शरीर है।	शरीर जीव है।
१७६	२	वयोऽपि	नयोऽपि
१८४	१६	बध	बंध
१८४	२१	पचास्तिकाय	पंचास्तिकाय
१८६	१६	अनादि, नित्य	अनादि-नित्य
१६१	२०	लाप	लोप
१६२	६	धमस्या	धर्मस्या

नोट (१)—पृ० १७२ सूत्र १६० की टीका में यह जोड़ना चाहिये—

'अनन्तानन्त विस्रसोपचय सहित कर्मपुद्गलस्कंध कथंचित् जीव क्योंकि वह जीव से पृथक् नहीं पाया जाता है [धवल पु० १२ पृ० २६६ 'आधेय में आधार का उपचार करने से परमाणु की जीवप्रदेश संज्ञा